शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन

1964-66

अनुशंसाओं का सारांश

शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन

1964-66

अनुशसाओं का साराश

शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन

1964-66

अनुशसाओं का साराश

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए
चित्रगुप्त प्रकाशन
पुरानी मण्डी अजमेर
(राजस्थान)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली की स्वीकृति से शिक्षा विभाग राजस्थान द्वारा अनूदित एवं प्रकाशित।

मूल्य 3 50

प्रकाशक शिक्षा विभाग राजस्थान बीकानेर
के लिए
चित्रगुप्त प्रकाशन
पुरानी मण्डी अजमेर

मुद्रक वन्दित मुद्रणालय
आर्यसमाज मार्ग, अजमेर

शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन

1964 1966

अनुशंसाओं का सारांश

लेखक

जे पी नायक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली द्वारा श्री जे पी नायक की मूल पुस्तक 'रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन 1964 66 —समरी ऑफ रिकमन्डेशन्स' का हिन्दी अनुवाद।

आमुख

राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति, सभी क्षेत्रों एवं सभी स्तरों की शिक्षा के विकास की नीति तथा शिक्षा के सामान्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सलाह प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने 14 जुलाई, 1964 को एक प्रस्ताव द्वारा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली के अध्यक्ष डॉ डी एस कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया।

शिक्षा आयोग ने अक्टूबर 2, 1964 को कार्यारम्भ किया। (1) विद्यालयी शिक्षा, (2) उच्च शिक्षा, (3) प्राविधिक शिक्षा, (4) कृषि शिक्षा, (5) प्रौढ़ शिक्षा, (6) विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान, (7) शिक्षक प्रशिक्षण तथा शिक्षक का स्तर, (8) छात्र कल्याण, (9) नवीन तकनीक तथा पद्धतियाँ, (10) जनबल, (11) शैक्षिक प्रशासन, तथा (12) शैक्षिक वित्त-व्यवस्था के सम्बन्ध में सामग्री तथा समस्या के विशद अध्ययन हेतु बारह कृतिक दलों (Task Force) का शिक्षा आयोग द्वारा गठन किया गया। इसके अतिरिक्त इसी उद्देश्य से सात कार्यकारी दलों (Working Groups) का भी गठन किया गया जिनका कार्यक्षेत्र इस प्रकार है (1) महिला शिक्षा, (2) पिछड़ी जातियों की शिक्षा, (3) विद्यालय भवन, (4 विद्यालय तथा समुदाय के सम्बन्ध, (5) सांख्यिकी, (6) पूर्व प्राथमिक शिक्षा और (7) विद्यालय पाठ्यचर्या।

उक्त कृतिक दलों तथा कार्यकारी दलों के विस्तृत प्रतिवेदनों के आधार पर विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के अध्यापकों शिक्षा शास्त्रियों, प्रशासकों तथा छात्रों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर, लगभग 9,000 व्यक्तियों (जिनमें प्रमुख समाजसेवी उद्योगपति वैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री सम्मिलित हैं) से साक्षात्कार तथा लगभग 2400 की संख्या में प्राप्त ज्ञापन-पत्रों के प्रकाश में शिक्षा आयोग ने अपना प्रतिवेदन 21 माह की अवधि के बाद जून 29 1966 को भारत सरकार को सौंप दिया।

शिक्षा आयोग के इस प्रतिवेदन के प्रकाशन को आज दो वर्ष से अधिक समय बीत गया है। इस बीच इस प्रतिवेदन को लेकर केन्द्र तथा राज्य स्तर पर जो चर्चाएँ हुई हैं शिक्षा के क्षेत्र में जो परिवर्तन लाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं उनसे इस क्षेत्र में रुचि रखने वाले व्यक्ति सामान्यतः अनभिज्ञ नहीं हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के स्वरूप निर्माण में तो इस प्रतिवेदन की प्रमुख भूमिका रही है। और इसलिए यह और भी आवश्यक हो गया है कि ऐतिहासिक महत्त्व के इस दस्तावेज का यथासम्भव अधिक गहराई में जाकर अध्ययन किया जाय।

शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन प्रकाशित होने के समय से ही शिक्षा विभाग राजस्थान की यह प्रबल इच्छा रही है कि यह प्रतिवेदन शिक्षा में रुचि रखने वाले तथा शिक्षा के क्षेत्र में काय करने वाले सभी व्यक्तियों को सुलभ हो। क्योंकि मूल प्रतिवेदन अंग्रेजी में है और अधिक मूल्य का होने के कारण अधिकांश की समझ व पहुँच के बाहर है अत अभिप्रेत यह रहा कि इसका कोई संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तरण जरूरतमंद व्यक्तियों को सुलभ कराया जाय। सौभाग्य से इसी बीच श्री जे पी नायक, जो शिक्षा आयोग के सदस्य सचिव थे और जो आजकल भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय में सलाहकार हैं व राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के लिए शिक्षा आयोग के इस विशाल प्रतिवेदन का अंग्रेजी में संक्षिप्तीकरण किया। यह अंग्रेजी संक्षिप्त संस्करण यद्यपि हर तरह से उपयोगी है तदपि हिंदी में न होने के कारण हिंदी के माध्यम से ही शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन करने तथा उनका समाधान खोजने में सक्षम वर्ग इसका लाभ कठिनाई से उठा पा रहा था। इस वर्ग की आवश्यकता पूर्ति के निमित्त श्री जे पी नायक की रिपोर्ट आव द एज्यूकेशन कमीशन 1964 66–समरी ऑव रिकमण्डेशन्स' (प्रकाशक–राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली) का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का काय इस विभाग ने किया है। आशा है कि यह पुस्तक प्रत्येक प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालय के पुस्तकालय में स्थान प्राप्त करेगी तथा सभी अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं श्री जे पी नायक तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की प्रकाशन इकाई का विशेषत आभारी हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद के लिए स्वीकृति देने की अनुकम्पा की।

बीकानेर
1 अगस्त 1968

हरिमोहन माथुर
अपर निदेशक

शिक्षा आयोग के सदस्य

अध्यक्ष

1 प्रो डा एम कोठारी अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।

सदस्य

2 श्री ए आर दाऊद, भूतपूर्व कार्यवाहक निदेशक, माध्यमिक शिक्षा विस्तार कार्यक्रम निदेशालय, नई दिल्ली।

3 श्री एच एल एल्विन निदेशक, इंस्टीटयूट अव एज्यूकेशन, लन्दन विश्वविद्यालय, लन्दन।

4 श्री आर ए गोपालास्वामी निदेशक, व्यावहारिक जनबल शोध संस्थान नई दिल्ली (तभी से सेवानिवृत्त)।

5 प्रो सदातोशी इहारा, स्कूल अव साइंस एण्ड इंजीनियरिंग, वासेडा विश्वविद्यालय, तोक्यो।

6 डा वी एस झा भूतपूर्व निदेशक, कामनवेल्थ एज्यूकेशन ल्याजन यूनिट लन्दन।

7 श्री पी एन किरपाल, शिक्षा सलाहकार तथा सचिव भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।

8 प्रो एम वी माथुर, अर्थशास्त्र एवं जन प्रशासन के प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर (वर्तमान उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय)।

9 डॉ बी पी पाल, निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली (वर्तमान महानिदेशक तथा उपाध्यक्ष, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् तथा खाद्य एवं कृषि मंत्रालय में भारत सरकार के अपर सचिव)।

10 कुमारी एस पननन्दिकर, अध्यक्ष शिक्षा विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ (तभी से सेवानिवृत्त)।

11 प्रो रोजर रिवल, निदेशक, सैण्टर फॉर पाप्युलेशन स्टडीज, हार्वर्ड स्कूल अव पब्लिक हेल्थ हार्वर्ड विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज, संयुक्त राज्य।

12 डॉ क जी सैयदैन, भूतपूर्व शिक्षा सलाहकार भारत सरकार, एवं निदेशक एशियाई शैक्षिक आयोजना एवं प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली (अब सेवानिवृत्त)।

13 डॉ टा सेन उपकुलपति जाम्वपुर विश्वविद्यालय कलकत्ता।

14 प्रा एम ए मुमाश्स्की निदेशक, मयाडॉलिजिकल डिविजन, मिनिस्ट्री ग्रव हायर एण्ड स्पेशल सेकण्डरी एज्यूकेशन, ग्रार एस एफ एस ग्रार ग्रौर मौलिकशास्त्र के प्राध्यापक मास्को विश्वविद्यालय, मास्को।

15 एम ज्यॉं टामस, इसपेक्टर जनरल ग्रव एज्यूकेशन, फ्रास, तथा सहायक महानिदेशक, यूनस्को पेरिस।

सदस्य सचिव

16 श्री जे पी नायक, ग्रध्यक्ष, शक्षिक ग्रायोजना प्रशासन तथा वित्त विभाग, गोखले इन्स्टीट्यूट ग्रव् पालिटिक्स एण्ड इकानामिक्स, पूना।

सहयोग सचिव

17 श्री जे एफ मक्डूगल सहायक निदेशक, डिपार्टमेण्ट ग्रव् स्कूल एण्ड हायर एज्यूकेशन, यूनस्को पेरिस।

अनुक्रम

भूमिका

1 शिक्षा का महत्त्व सदा से ही स्वीकार किया जाता रहा है लेकिन इसका जितना महत्त्व आज है उतना मनुष्य के इतिहास में कभी नहीं रहा। विज्ञान पर निर्भर आज के विश्व में एक ऐसी सुगठित शिक्षा तथा तत्सम्बन्धी अनुसंधान की आवश्यकता है जिसका लोगों के जीवन में, जरूरतों और आकांक्षाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध हो। देश के सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया, उसके कल्याण, उन्नति तथा उसकी सुरक्षा के लिए शिक्षा का बड़ा महत्त्व है।

2 शैक्षिक पुनर्निर्माण के तीन पक्ष

यदि समाज को समाजवादी, जनतान्त्रिक तथा आधुनिक बनाने की माँग को पूरा करना है तो भारत में प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन करने होंगे। वस्तुतः शिक्षा में एक ऐसी क्रान्ति की आवश्यकता है जो राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वांछित सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्रान्ति को सम्भव बना सके। इस क्रान्ति के तीन मुख्य पक्ष हैं:

—आन्तरिक रूपान्तरण जो शिक्षा प्रणाली को राष्ट्र के जीवन, उसकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से सम्बद्ध कर सके;

—गुणात्मक सुधार ताकि शिक्षा स्तर को प्राप्त किया जाय जो पर्याप्त एवं आदर्श हो, निरन्तर उन्नतिशील हो और कम से कम कुछ क्षेत्रों में वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के बराबर हो; और

—शैक्षिक अवसर की समानता पर बल और जनशक्ति की आवश्यकता के आधार पर शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार।

अध्याय 2

•

शिक्षा-व्यवस्था में परिवर्तन का रूपान्तरण

3 इन तीन पक्षों में से प्रथम पक्ष की प्रमुखता या प्राथमिकता स्पष्ट है। शिक्षा, राष्ट्रीय विकास और सुरक्षा में सीधा सम्बन्ध तभी सम्भव है जबकि राज्य उचित पैमाने पर उचित प्रकार की तथा उच्च गुणसम्पन्न शिक्षा की व्यवस्था करे। समय ही समस्या का मूलतत्त्व है क्योंकि शिक्षा की परम्परागत व्यवस्था के हर विस्तार के साथ उसके कटु परिणाम अपनी विशालता में सामने आते हैं और इस प्रकार शिक्षा का रूपान्तरण अधिक कठिन अधिक खर्चीला होता जाता है। अतएव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सुधार है, शिक्षा व्यवस्था में रूपान्तरण करना, उसे लोगों के जीवन तथा आवश्यकताओं से सम्बद्ध करना और इस प्रकार हमारे राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक रूपान्तरण में इसे शक्तिशाली साधन बनाना। इसे इस तरह से किया जा सकता है

—शिक्षा को उत्पादनोन्मुखी बनाकर

—सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता में अभिवृद्धि करके

—सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में मूल्य अभिस्थापन द्वारा

—अध्यापन एवं शिक्षण की आधुनिक पद्धतियाँ अपनाकर,

—शिक्षा व्यवस्था को लचीला एवं गतिशील बनाकर।

1 शिक्षा को उत्पादनोन्मुखी बनाना

परम्परागत समाज व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा सामान्यतया एक ऐसे सुविधा सम्पन्न वर्ग का निर्माण करती है जिनके पास अवकाश होता है और जिनका ध्येय था एक संस्कृति लाना है लेकिन जो स्वयं अपने हाथ से कोई काम नहीं करते। इसके विपरीत लोगों के उस एक बहुत बड़े समूह को कोई शिक्षा नहीं दी जाती जो राष्ट्रीय सम्पत्ति में विस्तार करता है। दूसरी ओर औद्योगिक समाज व्यवस्था में शिक्षा इस तरह उत्पादनोन्मुखी होती है कि शिक्षित व्यक्ति उत्पादन में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है और अशिक्षित व्यक्ति समाज पर भार स्वरूप हो जाता है। ऐसी स्थिति में शिक्षा में विकास होने से राष्ट्रीय सम्पत्ति का विकास होता है जिससे एवं साधन उपलब्ध होते

हैं जो शिक्षा के विकास में और अधिक सहयोग देते हैं। इस प्रकार शिक्षा और उत्पादकता दोनों एक दूसरे का सहारा देते हुए ऊपर चलते जाते हैं। भारतवर्ष में जबकि एक ओर नागरिकों के जीवन स्तर को उन्नत करना है और दूसरी ओर शिक्षा व्यवस्था को ग्राम नगरों तक विस्तार करना है तो इस प्रकार शिक्षा को उत्पादन से सम्बद्ध करना सर्वोच्च प्राथमिकता का कार्यक्रम बन जाता है।

इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित कार्यक्रमों को विकसित किया जाना चाहिए

(i) विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान

आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक एवं सांस्कृतिक आधार पर विज्ञान शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया जाय। कृषि एवं उद्योग में विस्तार तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि प्रौद्योगिकी में प्रगति पर निर्भर करती है। इससे रूढ़िवादिता के बंधन शिथिल पड़ जाते हैं, अंधविश्वास, भाग्यवाद तथा निष्क्रियता समाप्त हो जाती है और निर्भय सत्यान्वेषण में मनुष्य की निष्ठा या प्रतिबद्धता और अधिक सुदृढ़ हो जाती है। इसलिए विज्ञान-शिक्षा को समूची शिक्षा का अभिन्न अङ्ग बनाया जाना चाहिए। विज्ञान शिक्षण के स्तर में भी सुधार अपेक्षित है ताकि मूल सिद्धान्तों को समझने की शक्ति बढ़े, स्वतन्त्र चिन्तन एवं प्रयोग की भावना पैदा हो तथा विश्लेषणात्मक कुशलताओं और समस्या निदान की योग्यता का विकास हो। इस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि हमारे जीवन एवं हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अङ्ग बन जायगी। इसी तरह एक वैज्ञानिक अनुसंधान की परमावश्यकता है जो मुख्यतः उद्योग एवं कृषि के विकास को प्रभावित करने वाला हो।

(ii) कार्यानुभव

विद्यालय, घर, कार्यशाला, खेत, कारखाना या उत्पादन सम्बन्धी किसी भी स्थिति में उत्पादन कार्य में भाग लेने को कार्यानुभव की संज्ञा दी जा सकती है और इसे सभी स्तरों की सामान्य शिक्षा का अभिन्न अङ्ग समझा जाना चाहिए। इससे शारीरिक व बौद्धिक कार्यों के अन्तर को और इस पर आधारित सामाजिक स्तरभेद को कम करने में सहायता दी जा सकती है। इससे युवकों को कार्य क्षेत्र में प्रवेश करने की सुविधा प्राप्त होगी और आसानी से नौकरी मिल सकेगी। युवकों को इस प्रकार उत्पादन की प्रक्रिया में विज्ञान के उपयोग का प्रत्यक्ष ज्ञान मिलेगा जिससे शारीरिक श्रम के प्रति उनमें सम्मान पैदा होगा, कठिन और उबाऊ कार्य करने की क्षमता

पनपेगा और इसका फल यह होगा कि आर्थिक उन्नति में सहायता मिलेगी, और अन्त में कुछ तो व्यक्ति और समूह में सम्बन्ध गहरे होने के कारण और कुछ नगरस्थ वर्ग और ग्रामवर्ग में आपसी समझ बढ़ने के कारण सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकेगी। छात्रों की आयु व समझ की परिपक्वता को दृष्टिगत रखते हुए कार्यानुभव की मात्रा व प्रकृति को निश्चित करना होगा इसलिए शिक्षा के एक स्तर से दूसरे स्तर अथवा एक वर्ग से दूसरे वर्ग के लिए निर्धारित कार्यानुभव की मात्रा व प्रकृति में अन्तर होगा। लेकिन यह आवश्यक है कि कार्यानुभव न केवल आधुनिक औद्योगिकी से सम्बन्धित हो हो अपितु उत्पादकता सम्पन्न भी हो।

(iii) व्यवसाय व धंधों की शिक्षा

कृषि एवं उद्योग के लिए योग्य व्यक्तियों के निर्माण कार्य को उच्च प्राथमिकता दी जाय। अतः समय समय पर अनुमानित जनबल की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए माध्यमिक शिक्षा स्तर पर धंधों की शिक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाय। उत्पादन के समस्त क्षेत्रों में विशेषकर कृषि और उद्योग के कार्यकर्ताओं के लिए अंशकालिक व पत्राचार शिक्षा तथा संक्षिप्त पाठ्यक्रमों के माध्यम से, बहुत बड़े पैमाने पर व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय। धंधों की शिक्षा के गुणात्मक स्तर का उद्योग और कृषि से और भी घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा इस पर बल दिए जाने की आवश्यकता है।

6 सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की प्रगति

शक्तिशाली और संगठित राष्ट्र के निर्माण के लिए सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का बहुत बड़ा महत्त्व है हर प्रकार की उन्नति के लिए यह पूर्व शर्त है। इस उन्नति में शिक्षा महत्त्वपूर्ण योग दे सकती है। इस दृष्टि से जिस कार्यक्रम को विकसित किया जाता है वह इस प्रकार है

7 राष्ट्रीय चेतना

शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत इस प्रकार के विशेष प्रयत्न किये जायें कि भारतीय संस्कृति का विकास हो, हमारी सांस्कृतिक थाती के प्रति उचित गौरव की भावना उत्पन्न हो एवं जिस प्रकार के महान् भविष्य को हम अपने लिए निर्मित कर सकते हैं उसके प्रति हममें विश्वास एवं निष्ठा जागृत हो। यह तभी सम्भव है जब भारतीय दर्शन, धर्म, साहित्य, इतिहास व भाषाओं और भारतीय [illegible] सूर और सन्त

आदि की सुसंगठित रूप में शिक्षा दी जाय। इसके अतिरिक्त प्रत्येक छात्र को उसकी आयु एवं परिपक्वता के अनुरूप नागरिकता की ऐसी शिक्षा दी जाय, जिसके अन्तर्गत स्वतन्त्रता संग्राम, संविधान, संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित महान् मानव मूल्य, जिस प्रकार के लोकतान्त्रिक एवं समाजवादी समाज की रचना करना हम चाहते हैं उसकी प्रकृति, देश के समक्ष आने वाली विभिन्न अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन समस्याएं, उनके अस्थायी निदान तथा राष्ट्रीय विकास से सम्बन्धित पंचवर्षीय योजनाओं आदि विषयों का अध्ययन सम्मिलित किया जा सके। साथ में सावधानी रहे तो उपर्युक्त कार्यक्रम को अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव से तथा सम्पूर्ण मानवजाति के प्रति गहरी निष्ठा से सामञ्जस्य रहेगा जिस पर भी हम विशेष बल देने की आवश्यकता है।

६ सामाजिक अथवा राष्ट्रीय सेवा

किसी न किसी प्रकार की सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। ऐसी सेवा हर स्तर की शिक्षा का अभिन्न अंग हो। विद्यालय तथा महाविद्यालय में समुदाय रूप में रहना तथा सामुदायिक सेवा अथवा राष्ट्रीय पुनर्रचना का व्यापक व चुनौतीपूर्ण गतिविधियों में भाग लेना आदि कार्यक्रम सामाजिक सेवा अथवा राष्ट्रीय सेवा के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाने चाहिए। प्राथमिक स्तर पर इस कार्यक्रम का उद्देश्य होगा—उचित उपायों द्वारा समाज सेवा पर विशेष बल देते हुए समाज और विद्यालय के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना। माध्यमिक शिक्षा स्तर पर इन उद्देश्यों का विस्तार किया जा सकता है। प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय को प्रोत्साहित किया जाय कि वह समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करे तथा समाज-सेवा से सम्बन्धित कुछ समुचित कार्यक्रम बनाये जिसमें अध्यापक व छात्र भाग ले सकें। जहाँ यह सम्भव न हो वहाँ कुछ माध्यमिक विद्यालयों के समूह के लिए सामाजिक सेवा एवं श्रम शिविरों की केन्द्रीय रूप से व्यवस्था की जाय और यह अनिवार्य होना चाहिये कि निम्न माध्यमिक शिक्षा-स्तर का प्रत्येक छात्र कम से कम 30 दिन तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर का छात्र 20 दिन इन शिविरों में व्यतीत करे। विश्वविद्यालय स्तर पर यह कार्यक्रम एन सी सी का विकल्प हो। माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक संस्था को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाय कि वह समाज और उसके उपयुक्त अपना ऐच्छिक सेवा कार्यक्रमों का निर्माण करे। लेकिन जहाँ यह सम्भव न हो तो वहाँ प्रत्येक छात्र के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि वह अपनी प्रथम स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पूर्व किसी

वर्ष में संचालित किसी सामाजिक एवं श्रम शिविर में कम से कम 60 दिन व्यतीत करें। इस प्रकार कार्यक्रम से राष्ट्रीय चेतना के विकास में अभिवृद्धि तो होगी ही इसके साथ साथ शासक्य श्रेणी के लोगों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना पैदा होगी और जन सेवा के लिए उन्हें प्रेरणा मिलेगी।

9 जन विद्यालय प्रणाली (कॉमन स्कूल सिस्टम)

इस समय शिक्षा व्यवस्था में जो वर्ग भेद चल रहा है उसे अविलम्ब समाप्त किया जाना चाहिए। आज एक ओर सम्पन्न व्यक्ति अपने अपने बालकों को ऐसे [illegible] निजी (प्राइवेट) विद्यालयों में पढ़ने को भेजते हैं जो अधिक शुल्क वसूल करते हैं और उच्च स्तर को बनाये रखते हैं जबकि दूसरी ओर बहुसंख्यक जनसमूह को अपने बालकों को ऐसे विद्यालयों में अध्ययन हेतु भेजना पड़ता है जो सरकार द्वारा चलाये जाते हैं और जहाँ कोई शुल्क (अथवा पुस्तकालय इत्यादि के नाम मात्र का शुल्क) नहीं लिया जाता लेकिन जिनका स्तर बहुत गिरा हुआ होता है। अतएव शिक्षा नीति का यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह जन शिक्षा के लिए ऐसे जन विद्यालयों की व्यवस्था करे

—जहाँ जाति वर्ग-सम्प्रदाय धर्म आर्थिक दशा अथवा सामाजिक स्तर के भेद भाव के बिना सभी प्रकार के बच्चों के लिए प्रवेश संभव हो सके,

—जहाँ बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए धन या वंश को नहीं अपितु योग्यता को आधार माना जाय

—जिनमें किसी प्रकार का अधिक शुल्क न लिया जाय और

—जिनके अन्तर्गत प्रत्येक विद्यालय वांछित स्तर को बनाये रख सके तथा ऐसे उचित अनुपात में ऐसी संख्या एवं स्तर के संस्थान चलाए जायें कि साधारण अभिभावक अपने बालकों को संकीर्ण विद्यालयों में भेजने की आवश्यकता अनुभव ही न करें।

10 यथासम्भव शीघ्र पड़ोसी विद्यालयों (नेबरहुड स्कूल्स) की धारणा को क्रियान्वित किया जाय तात्पर्य यह है कि एक निश्चित क्षेत्र के सभी बच्चे अपने निकटस्थ विद्यालय में अध्ययन करने के लिए जायें। इस व्यवस्था को प्रारम्भ में प्राथमिक और तदनन्तर उच्च प्राथमिक शिक्षा स्तर पर लागू किया जाय। साधारण लोगों के बीच इस प्रकार जीवन का मेल बढ़ जाना एक अत्यन्त ही मूल तत्त्व है। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था के अन्तर्गत सभी [illegible] सुविधासम्पन्न तथा कमजोर वर्गों के लोग जन शिक्षा की व्यवस्था

में रुचि लेने के लिए बाध्य हो जायेंगे। इस प्रकार शीघ्र सुधार सम्भव हो सकेगा।

11 शिक्षा की जनविद्यालय प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग यह भी है कि सरकारी सहायता प्राप्त समस्त शिक्षण संस्थाओं (जिनमें स्वतन्त्र या मान्यता प्राप्त विद्यालयों के अतिरिक्त सभी शिक्षण संस्थाएँ सम्मिलित हैं) चाहे उनका प्रबन्ध किसी भी प्रकार का क्यों न हो, शिक्षा में ऐसी कुछ निश्चित समान विशेषताएँ हों जो न्यूनतम स्तर को बनाये रख सकें। इस समय इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। प्रबन्ध के आधार पर शिक्षण संस्थाओं में तीन प्रकार की वर्ग व्यवस्था प्रचलित है। राजकीय शिक्षण संस्थाओं में सम्भवतः अध्यापकों के लिए सर्वोत्तम सेवा सम्बन्धी शर्तें प्राप्त हैं। तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखें तो इनको आर्थिक साधन भी उदारतापूर्वक उपलब्ध हैं, लेकिन सेवा की अपेक्षित सुरक्षा तथा स्थानान्तरण (जिसके कारण वे संस्था के प्रति न होकर श्रेणी के प्रति निष्ठावान रहते हैं) समुदाय से जीवन्त सम्बन्धों के अभाव तथा स्वतन्त्रता पर कड़े प्रतिबन्धों के कारण ये लाभ एक प्रकार से व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं। स्थानीय स्वायत्त शिक्षण संस्थाओं में ये सब कठिनाइयाँ तो हैं ही इनके अतिरिक्त स्थानीय राजनीति के कारण अध्यापकों को मिलनेवाली सेवा सुविधाएँ भी असन्तोषजनक होती हैं। अच्छे निजी विद्यालय योग्य एवं निष्ठावान अध्यापकों को आकर्षित कर सकते हैं समाज अथवा समुदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रख सकते हैं तथा वे अपनी स्वतन्त्रता भी बनाये रख सकते हैं। लेकिन उनका आर्थिक आधार निर्बल होता है जो राजकीय विद्यालयों में नहीं होता। ऐसे अधिकांश विद्यालयों में दो प्रकार की अन्य कठिनाइयाँ भी होती हैं—अध्यापकों के लिए अपर्याप्त सेवा-सम्बन्धी शर्तें तथा शिक्षा से असम्बद्ध प्रबन्धक। इन ज्वलन्त असमानताओं को दूर करने की आवश्यकता है। प्रबन्धक चाहे कोई भी हो, इन समस्त संस्थाओं में कुछ समान विशेषताएँ निश्चित करने की आवश्यकता है—जैसे अध्यापकों के समान स्तर, समान फीस, प्रवेश सम्बन्धी समान नीति जिससे वर्ग भेद समाप्त हो और योग्यता के आधार पर सभी शासकीय संस्थाओं में प्रवेश की सुविधा हो, स्थानीय समुदाय से सम्पर्क, नवीन विधियाँ अपनाने तथा प्रयोग करने की स्वतन्त्रता।

12 अन्तर्राज्यीय सद्भाव

शिक्षा का यह प्रयत्न होना चाहिए कि देश भारत के विभिन्न भागों में एक दूसरे के विषय में अधिक जानकारी, अधिक सद्भाव और अधिक सौहार्द्र-पूर्ण वातावरण का निर्माण हो सके। उसका विस्तार हो सके। यह कार्य

पाठ्यक्रमों में स्थान देकर, अध्यापकों के आदान प्रदान द्वारा, देश की विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के विकास से, अन्तर्राज्यीय आधार पर ग्रीष्म विद्यालयों व शिविरों का आयोजन करके तथा देश के प्रत्येक भाग के छात्रों को प्रवेश देनेवाली अखिल भारतीय शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना करके किया जा सकता है।

13 यह भी अनिवार्य है कि राज्यों में परस्पर आदान प्रदान हेतु विविध प्रकार के साधन अपनाये जायें। प्रत्येक भाषायी क्षेत्र में कुछ ऐसे व्यक्ति हों जो अन्य समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं को जानते हों तथा कुछ ऐसे भी हों जो उनके साहित्य से परिचित हों तथा उनमें भाषान्तर करने में सक्षम हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यालयों महाविद्यालयों में विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्यापन की समुचित व्यवस्था हो। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विश्वविद्यालय में आधुनिक भारतीय भाषाओं से सम्बन्धित ऐसे विभाग स्थापित किये जायें जो प्रभावशाली रूप से कार्य करें। एक सुझाव यह भी है कि कुछ ऐसी विशिष्ट संस्थाएँ अथवा उन्नत केन्द्र स्थापित किये जायें जहाँ विभिन्न भाषाओं तथा उनकी भाषायी समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। बी० ए० तथा एम० ए० स्तर पर दो आधुनिक भारतीय भाषाओं का साथ साथ पढ़ाया जाना सम्भव हो सकता है—यह सुधार करने से ऐसे द्विभाषी भाषा व्यक्ति प्राप्त हो सकेंगे जिनकी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में भाषा शिक्षण के लिए आवश्यकता होगी।

14 हिन्दी तथा अंग्रेजी

हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं का सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित किया जाय। क्योंकि हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो विशाल जन समूह की सम्पर्क भाषा बन सकती है। इसको अहिन्दी क्षेत्रों में विस्तार करने के लिए सभी उपाय काम में लाये जाने चाहिए तथा इस क्षेत्र में किये जानेवाले स्वैच्छिक प्रयत्नों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाय। अंग्रेजी सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तकालय भाषा रहेगी तथा अनेक कार्यों से सम्बन्धित शिक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक आदान प्रदान में सम्पर्क भाषा के रूप में उपयोगी होगी। अन्य पुस्तकालय भाषाओं में विशेषतः रूसी भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाय।

15 आधुनिक भारतीय भाषाएँ

समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में इन्हें अपनाया जाय। इस

उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक दस वर्षीय क्रमिक कार्यक्रम (फेज्ड प्रोग्रेम) बनाया जाय तथा आवश्यक साहित्य के निर्माण-कार्य को उच्च प्राथमिकता दी जाय। उर्दू क्षेत्रीय भाषा नहीं है, इसे उचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। अहिन्दी क्षेत्रों में उच्च शिक्षा से सम्बन्धित ऐसी संस्थाएँ हैं, जो हिन्दी को माध्यम भाषा के रूप में अपनाना चाहती हैं, उन्हें भी उचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

16 मूल्य अनुस्थापन (वेल्यु ओरियेन्टेशन)

चरित्र निर्माण शिक्षा का सदा से ही महत्वपूर्ण प्रयोजन रहा है। महत्व आधुनिक समाज में और भी अधिक बढ़ गया है क्योंकि आधुनिक समाज का कुशलक्षेम ऐसे व्यक्तियों की अभिप्रेरणा पर आधारित है जो जीवनयापन की गहराई से परिचित रहे हैं तथा जिनके समक्ष उतनी विभिन्न रुचियों में से आज वरण की स्वतन्त्रता है जितनी भूतकाल के किसी भी समय में नहीं थी। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का मुख्य प्रयोजन ज्ञान देना है। मुख्यतः ज्ञान पर ही सारा ध्यान केन्द्रित करने वाली वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था के अन्तर्गत इस महत्वपूर्ण प्रयोजन पर दुर्भाग्य से कम ही ध्यान दिया गया है। अतएव यह आवश्यक हो गया है कि इस शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था में जीवन मूल्यों का अनुस्थापन किया जाय तथा उभरती हुई पीढ़ी में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों को स्थान दिया जाय।

17 इनमें से कुछ आवश्यक मूल्यों को पहले ही गिनाया जा चुका है जैसे वैज्ञानिक मानसिक स्वभाव तथा निर्भय सत्यान्वेषण—आधुनिक विश्व में इसने बहुत महत्ता प्राप्त कर ली है, शारीरिक श्रम के प्रति आदर तथा ऐसे कठिन एवं उत्तरदायी कार्य करने की क्षमता जो उत्पादकता में वृद्धि कर, इसका सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना और समाज सेवा की भावना के प्रति ऐसी श्रद्धा तथा विश्वास जिससे कि सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता में वृद्धि हो। एक मूल्य भी समान रूप से ही महत्वपूर्ण है जो लोकतन्त्र को जीवन यापन के तरीके के रूप में विकसित कर सकें और इस प्रकार इसे (लोकतन्त्र) शासन प्रणाली के रूप में भी सफल बना सकें, जैसे दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने के लिए सदैव तत्पर रहना, विचार विमर्श समझाना बुझाना, समझौता तथा ऐसे ही अन्य शान्तिपूर्ण उपायों से झगड़ों को तय करने के लिए धैर्यपूर्वक प्रयत्न करना, तथा दूसरे सामाजिक समूहों की संस्कृति को समझना और उसका आदर करना। हमारे संविधान की प्रस्तावना के अनुसार हम व्यक्ति की महानता स्वतन्त्रता तथा समानता एवं न्याय सम्बन्धी मूलभूत

मानवीय मूल्यों के प्रति निष्ठा रखनी चाहिए। हमारे परम्परित महान् मूल्य भी समान रूप से ही महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे निःस्वार्थता, कर्तव्यपरायणता, सहिष्णुता, शांतिप्रियता तथा जीवमात्र के प्रति सम्मान। अन्य मूल्य भी बताये जा सकते हैं लेकिन उन सबका यहाँ विस्तार देना न तो सम्भव है और न आवश्यक ही। इस सन्दर्भ में तीन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का ध्यान में रखा जाना चाहिए—पहला, इन मूल्यों को सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रमों में सम्मिलित करना तथा विद्यालयों के वातावरण एवं अध्यापक के व्यवहार और उनके व्यक्तित्व के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से इनका अभिवृद्धि करना। दूसरा यह वांछित ही है कि विशिष्ट प्रकार के प्रत्यक्ष दिशा निर्देश तथा महानधर्मों के उपदेशों के सन्दर्भ में लगे प्रयत्नों को सहयोग मिले। तीसरा, इन मूल्यों को प्रस्थापित करने के लिए जो प्रयत्न किये जायें उनमें हम अपनी परम्परा व संस्कृति की आवश्यकतानुसार पुनर्व्याख्या और पुनर्मूल्यांकन करें तथा दूसरे देशों में इस प्रकार के जो उदारता मूलक प्रयत्न हुए हैं उनका भी लाभ लें, उदाहरणार्थ पश्चिम की राज्यक्रांति, मानव का दर्शन तथा समाजवाद का उत्थान। इस प्रकार के सन्तुलनशील प्रभावों का उन क्षेत्रों में और भी विशिष्ट महत्त्व है जहाँ भारतीय परम्परा अपेक्षाकृत सशक्त नहीं रही है जैसे समानता तथा सामाजिक न्याय का क्षेत्र।

1.9 शिक्षण तथा मूल्यांकन की आधुनिक विधियाँ

आधुनिक तथा परम्परित शिक्षा-व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर उनका शिक्षण तथा मूल्यांकन की रीति को लेकर है। परम्परित समाज में ज्ञान की वृद्धि तथा सामाजिक परिवर्तन की गति बहुत धीमी होती है। अतएव वहाँ शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है बना बनाया या गढ़ा हुआ व्यक्तित्व निर्मित करना, युवक को जीवन यात्रा का स्पष्ट मानचित्र दे देना, शास्त्रों का परिरक्षण करना तथा आलोचनात्मक या सृजनात्मक शक्तियों के विकास की अपेक्षा ज्ञान का स्मरण करने, पूर्वजों से प्राप्त समस्त ज्ञान के प्रति मात्र सम्मान प्रदर्शित करने तथा उसे बिना किसी प्रश्न के स्वीकार करने पर विशेष बल देना। प्रचलित व्यवस्था में शिक्षण पद्धति तथा मूल्यांकन के स्वरूप इस का अनुसरण होता है। लेकिन आधुनिक समाज में ज्ञान की वृद्धि तथा सामाजिक परिवर्तन की गति बहुत तेज होती है। अतएव शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए उचित रुचियों, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का निर्माण करना न कि बना बनाया या गढ़ा हुआ व्यक्तित्व पैदा करना, युवकों को जीवन-यात्रा के लिए निश्चित स्थूल रूप देना न कि मानचित्र, ज्ञान का

परिरक्षण ही नहीं उसमें वृद्धि भी करना। अतएव शिक्षण की ऐसी आधुनिक पद्धतियों (मूल्यांकन की तत्सम्बन्धी तकनीक के साथ साथ) का उपयोग करना आवश्यक है जो जिज्ञासा वृत्ति के प्रोत्साहन, अध्ययनप्रियता, स्वाध्याय की आदत, चिंतन व स्वयं निर्णय की क्षमता एवं समस्या निदान की क्षमता को विशेष महत्त्व देती हों। अध्ययन के क्षेत्र में यह क्रांति और उसका ऐसा मूल्यांकन ही हमारी नयी शिक्षा-व्यवस्था की मूल आवश्यकताएँ हैं तथा यही वे मूल तत्त्व हैं, जो आधुनिकीकरण की गति को तीव्र करेंगे।

19 मुख्य समस्या है शिक्षण तथा मूल्यांकन की ऐसी नयी पद्धतियों के प्रवर्तन तथा प्रचार प्रसार करने की, जो कक्षा में शिक्षण कार्य को आधुनिक स्वरूप प्रदान करें। इसका सन्तोषप्रद निदान कई कारणों पर निर्भर करता है, जैसे अध्यापकों की स्वतन्त्रता तथा उनकी क्षमता, अनुसन्धान या विकास सुधार के लिए सामान्य वातावरण को बनाये रखना, प्रशासन की ओर से सहयोग तथा सहानुभूति, कार्य करने के लिए सन्तोषप्रद परिस्थितियाँ तथा प्रभावशाली शिक्षण सामग्री की पर्याप्त उपलब्धि। यह भी ध्यान में रखना है कि कक्षा में किये जाने वाले प्रयोग कभी भी विशाल स्तर पर नहीं अपनाये जाते और न ही सभी अध्यापक तथा विद्यालय एक रूप होकर प्रगति की ओर बढ़ते ही हैं। शिक्षक सृजन के लिए उपयुक्त क्षेत्र की आवश्यकता की बजाय सेवा सुरक्षा को अधिक महत्त्व देने वाले, कमजोर एवं सामान्य शिक्षक तो उस मान्यता का स्वागत करेंगे, जो उन्हें विस्तृत पाठ्यचर्या तथा पुस्तकों, परीक्षाओं में बार-बार होने वाले निरीक्षणों तथा सुपरिभाषित नियमों से प्राप्त होती है। लेकिन यदि सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों को विभागीय विनिर्दिष्ट नियमों से हटकर कार्य करने के लिए स्वीकृति, प्रोत्साहन तथा सहयोग नहीं दिया जाता, तो उनके शिक्षण-कार्य में एक तरह से बाधा ही उत्पन्न होगी। अतः मूल बात यह है कि एक ऐसा कार्यक्रम अपनाया जाए जो लचीला हो तथा जिसके अन्तर्गत अच्छे विद्यालयों और अच्छे अध्यापकों को प्रगति करने के पर्याप्त अवसर सुलभ हों एवं निर्बल संस्थाओं तथा व्यक्तियों को सुधार कर सकने की दिशा में आवश्यक सहयोग भी प्राप्त हो।

20 इस सम्बन्ध में दो और बिन्दुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहला तो यह है कि मूल्यांकन और शिक्षण की नयी तकनीक के प्रचार प्रसार की गति बहुत तीव्र हो, अर्थात् दूसरे शब्दों में उन्नतिशील संस्थाओं द्वारा नयी व्यवस्था प्रथम बार अपनाये जाने के समय से लेकर उसके स्थानान्तरण दूसरे अन्य संस्थाओं के विकास तक के बीच का समय न्यूनतम हो। दूसरे यह मानना

गलत होगा कि तकनीक में यह सुधार हमेशा के लिए हो गया, वस्तुत इसके सतत् पुनर्नवीकरण की आवश्यकता है। कोई 'प्रगतिशील' धारणा सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था में सामान्य रूप से अपनाई जाने योग्य बनती है। इससे पूर्व ही वह एक प्रकार की नयी 'रूढ़ि' का रूप धारण कर लेती है अथवा ज्ञान में अभिवृद्धि या सामाजिक परिवर्तन के कारण उसकी सुसंगति नष्ट हो चुकी होती है। इसलिए कुछ अन्य अधिक प्रगतिशील तकनीक के सन्दर्भ में उस सम्पूर्ण प्रक्रिया को फिर दोहराना होता है। यह एक अपरिहार्य तथा शाश्वत समस्या है जिसका सामना शिक्षा को करना है।

21 लचीलापन तथा गतिशीलता

इसके लिए आवश्यकता है एक लचीली तथा गतिशील शिक्षा व्यवस्था की, विशेषत एक आधुनिक समाज में तो अवश्य ही जहाँ ज्ञान के विस्फोट के साथ-साथ समाज तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा हो। परम्परागत समाज में एक बार जड़ें जमा लेने वाली शिक्षा व्यवस्था वर्षों तक (हाँ, सदियों तक) प्रभावशाली रह सकती थी। अब यह सम्भव नहीं है और आज के समाज में उन्हें ठीक तौर से भविष्य के बारे में कह सकना निश्चित नहीं है वहाँ एक बात अवश्य निश्चित है कि भूतकाल की शिक्षा व्यवस्था वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती और भविष्य की आवश्यकताओं की तो बिल्कुल नहीं। अत आवश्यकता है कि वर्तमान व्यवस्था की कठोर स्थिति से छुटकारा प्राप्त किया जाय, लचीलापन तथा गतिशीलता का महत्त्व दिया जाय और स्वयं शिक्षा व्यवस्था के भीतर एक ऐसी कार्य पद्धति का जन्म दिया जाए जो परिवर्तित परिस्थितियों में लगातार सामञ्जस्य स्थापित करती रहे।

22 इस देश के विशाल आकार, स्थानीय परिस्थितियों की अनेकरूपता तथा बहुलता एवं देश के भिन्न भिन्न भागों में विकास के भिन्न भिन्न स्तरों के कारण शिक्षा व्यवस्था में लचीलापन तथा गतिशीलता की और भी अधिक आवश्यकता हो गई है। जब कोई कठोर एकरूप नीतियाँ तथा कार्यक्रम केन्द्र द्वारा उन पर शिक्षा में लादना चाहता है तो यह विनाशकारी अक्षमता तथा जटिलता उत्पन्न करने वाला सिद्ध होता है। दूसरी ओर यदि संस्थाओं को शिक्षा हेतु नाना प्रकार की शक्ति पर आधारित एक लचीली एवं परिवर्तनशील प्रणाली दी जाती है तो निश्चय होता है कि प्रत्येक वर्ग और [illegible] परिणाम प्राप्त होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

23 ऐसा होने में ऐसा लगता पर ऐसा प्रकार के ... आवश्यकता में

लचीलेपन तथा गतिशीलता का व्याप्त हो जाना होगा। उदाहरणार्थ सभी क्षेत्रों के विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की कक्षाओं के स्वरूप में अव्याहत एकरूपता पर बल देने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक स्थानीय क्षेत्र को अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप विकास कार्यक्रमों में सामञ्जस्य स्थापित करने की पर्याप्त छूट दी जानी चाहिए। पाठ्यचर्याओं में विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं की विभिन्न परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुकूल पर्याप्त लचीलापन होना चाहिए। इन पाठ्यचर्याओं को नवीनतम जानकारी का समावेश कर अवसर समायोजित किया जाता रहना चाहिए। विषय अथवा विषय समूह के निर्वाचन एवं किसी एक प्रकार या श्रेणी से दूसरे प्रकार या श्रेणी के विद्यालय बदलने के लिए आज जितनी स्वतन्त्रता उपलब्ध है, उससे कहीं अधिक स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। यह भी सम्भव होना चाहिए कि प्रत्येक शैक्षिक संस्था को एक व्यक्तित्व समझा जाय, जिसे इस बात की छूट हो कि वह अपनी सुरुचि की किसी विशिष्ट दिशा में जो कुछ उसकी अपनी बढ़िया रफ्तार हो, उसमें उन्नति कर सके। स्पष्ट है कि ऐसे परिवर्तन और सुधार तभी सम्भव हैं जबकि—

—अध्यापक तथा शैक्षिक प्रशासक सतर्क हों अपने क्षेत्र के नवीनतम विकास से परिचित हों और अनुसंधान एवं निरन्तर मूल्यांकन में रुचि रखते हों।

—सामान्य वातावरण प्रयोग व पहल की प्रवृत्ति तथा सृजनशीलता को अभिवृद्ध करने वाला हो।

—प्रशासन का इस तरह विकेन्द्रीकरण हो गया हो कि विचारों का प्रभावी उन्नति सम्भव हो सके।

गुणात्मक सुधार

24 ऊपर बताये गये तरीकों से शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन लाने तथा उसे लोगों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं व जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित करने के प्रयत्नों के साथ साथ यह प्रयत्न भी होना चाहिए कि सभी क्षेत्रों में सभी स्तरों पर शिक्षा के मानक या स्तर पर्याप्त रूप से ऊँचे उठें और लगातार उन्नतिशील बने रहें तथा कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐसे भी क्षेत्र हों जिनमें ये अन्तर्राष्ट्रीय मुकाबले में भी खड़े हो सकें।

25 यह एक सामान्य शिकायत रहा है कि मुख्यतः हमारे गत बीस वर्षों में शैक्षिक विकास की सुविधाओं में तीव्रगति से होने वाले विस्तार के परिणाम स्वरूप शिक्षा का स्तर गिरा है। उदाहरणार्थ, मुख्यतः दोषपूर्ण आयोजन तथा आवश्यक साधनों के अभाव के कारण निम्नस्तरीय संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। शिक्षण के स्तर में भी गिरावट आयी है क्योंकि छात्र विस्तार की अवधि में प्रवेश संख्या की वृद्धि के अनुपात में अच्छे अध्यापकों की संख्या में वृद्धि नहीं होने और निम्नस्तरीय उपलब्धियों वाले विद्यार्थियों की संख्या में भी कुछ वृद्धि हुई है हालांकि इनमें कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी पीढ़ी में पहली बार विद्याध्ययन हेतु आने के कारण सामाजिक न्याय की दृष्टि में स्वीकारात्मक व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं। शिक्षा में विस्तार की अवधि में ऐसा होना आवश्यक है और सामाजिक न्याय की दृष्टि से इससे कुछ लाभ भी है। दूसरी ओर चिकित्सा अथवा इन्जीनियरिंग जैसे व्यवसायों तथा मुख्यतः प्राकृतिक विज्ञानों जैसे कुछ विषयों में अनुसंधान एवं शिक्षण के स्तर में अभिवृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त अच्छी संस्थाएँ एवं अच्छे छात्र अब अधिक संख्या में हैं और गुणात्मक स्तर में जितने पहले अच्छे थे उतने आज भी हैं यद्यपि अधिक अच्छे नहीं हैं। इस प्रकार हमारे समस्त शिक्षा का जो चित्र है वह उज्ज्वल भी है धुंधला भी है यद्यपि स्तर को उन्नत करने की समस्या तथा तीव्रता की अवगणना करना गलत होगा तथापि यह भी उतना ही गलत होगा यदि हम गत कुछ वर्षों की गुणात्मक उपलब्धियों की सम्पूर्ण रूप से उपेक्षा कर दें क्योंकि ये ही हमें भविष्य में कठिनाइयों का सामना करने में सम्बल प्रदान करेंगी।

26 शिक्षा की पुनर्रचना के सम्बन्ध में मूल प्रश्न यह तय करना नहीं है कि स्तर या मानक गिर रहे हैं अथवा उन्नत हो रहे हैं बल्कि यह देखना है कि वे पर्याप्त हैं कि नहीं [illegible] हैं कि नहीं तथा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर

तुलनीय हैं कि नहीं। इन्हीं महत्त्वपूर्ण मापदण्डों के अनुसार उन्हें जाँचने की
आवश्यकता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि हमारी शिक्षा-
व्यवस्था के अन्तर्गत प्रचलित मानक इस कार्य को करने के लिए उन्हें प्रयुक्त
किया जाना है। अधिक महत्त्वपूर्ण तो यह है कि यदि वर्तमान उपलब्ध
सुविधाओं का भलिभाँति उपयोग किया जाता, तो ये मानक कहीं अधिक अच्छे
हो जाते। जहाँ मानक में उन्नति हुई भी है उनकी गति औद्योगीकृत देशों के
विकास के अनुरूप नहीं रही है। परिणाम यह हुआ कि उनके और हमारे
मानक के बीच गत बीस वर्षों में खाई चौड़ी हुई है। अतएव शिक्षा नीति का
प्रयोजन यह होना चाहिए कि वह गुणात्मक सुधार के कार्यक्रमों को महत्त्व दे
ताकि उपलब्ध सुविधाओं के स्तर के अनुरूप यथासम्भव श्रेष्ठ मानक स्थापित
हो सकें जिन कार्यों के लिए उन्हें निर्धारित किया गया है, उनके लिए वे
पर्याप्त हों, आधुनिक समाज जिस प्रकार के चरित्र, कुशलताओं तथा ज्ञान के
उत्तरोत्तर उठते हुए स्तर की अपेक्षा करता है उसके अनुरूप वे बढ़ते रहें
कम से कम उन मुख्य क्षेत्रों में जहाँ तुलना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, वहाँ
अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ये मानक तुलनात्मक स्तर पर खरे उतरें।

27 नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों का उल्लेख किया जा रहा है जिन्हें
शिक्षा में मानक के सुधार के लिए विकसित किया जाना चाहिए—

—सुविधाओं का समुचित उपयोग,
—शिक्षकों की गुणात्मकता, क्षमता तथा उनका चरित्र,
—पाठ्यचर्या में सुधार तथा पाठ्यक्रम का पुनर्गठन,
—पाठ्य पुस्तकों में गुणात्मकता सुधार तथा उनका निःशुल्क वितरण
अथवा पाठ्य पुस्तक पुस्तकालयों का पर्याप्त मात्रा में निर्माण
करके छात्रों को पाठ्य पुस्तकों को उपलब्ध कराना,
—परीक्षा प्रणाली में सुधार,
—शैक्षिक संस्थाओं के आकार तथा उनकी स्थिति के सम्बन्ध में
उचित आयोजना,
—आवश्यक सुविधाओं की पर्याप्त मात्रा में व्यवस्था,
—छात्र-सेवाओं की व्यवस्था
—प्रतिभाओं का अन्वेषण एवं विकास,
—शिक्षा में राष्ट्रव्यापी सुधार और कार्यक्रम का गठन
—चुनिन्दा संस्थाओं का अधिकतम सीमा तक अथवा मार्ग दर्शक के
रूप में उनका विकास करना, और
—पर्यवेक्षण में सुधार करना।

28 सुविधाओं का सघन उपयोग

जिन समस्त तत्वों पर मानक निर्भर करते हैं उनमें सर्वाधिक महत्त्व
पूर्ण है दायित्वाधीन कठिन श्रम तथा निष्ठा के वातावरण के निर्माण के साथ
साथ प्रचलित सुविधाओं का सघन उपयोग करना। स्वतः तीव्रतापूर्वक चलने
वाली विकास की शिक्षा प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम वर्तमान

निर्दिष्ट स्तर में कुशलता को सुधारा जाय। उपलब्ध सुविधाओं का अधिकतम सीमा तक उपयोग किये बिना ही यदि उनमें और वृद्धि करदी जाती है तो वह मात्र अपव्यय ही होगा, जो निर्धन तथा विकासशील राष्ट्र शायद ही बर्दाश्त कर पायें।

29 इस दृष्टिकोण से कई उपायों को अपनाना होगा। पहला है आकस्मिक छुट्टियों की संख्या तथा परीक्षाओं के कारण अध्यापन दिवसों की हानि को कम करना तथा कार्य दिवसों की संख्या में वृद्धि करना (विद्यालयों में वर्ष में 236 तथा महाविद्यालयों में वर्ष में 216 अध्यापन दिवस से कम न हों)। कार्य दिवस की अवधि लम्बी हो। पाठ्यचर्या तथा अन्य कार्यक्रमों के समुचित गठन द्वारा अवकाश दिनों का पूरा उपयोग किया जाय। ऐसी भावना पैदा की जाय कि शिक्षण संस्थाएं विद्यामन्दिरों की तरह हैं जिन्हें कभी भी बन्द नहीं रखा जाना चाहिए—जैसे पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि वर्ष भर और एक दिन में अधिक नहीं तो कम से कम आठ घण्टे तो खुले रहें। स्वाध्याय की भावना को बढ़ावा देने के लिए औपचारिक कक्षान्तर्गत शिक्षण के 'सम्पर्क घण्टों' की छात्र के कुल कार्य भार घटते हुए अनुपात में व्यवस्था की जाय। शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर सम्पर्क घण्टों की संख्या अधिक हो तथा जैसे जैसे कोई छात्र उच्च स्तर प्राप्त करता जाय सम्पर्क घण्टों की संख्या घटती जाय। उदाहरण के लिए स्नातक पूर्व स्तर पर कुल कार्य भार के एक तिहाई या एक चौथाई सम्पर्क घण्टे हों तथा स्नातकोत्तर स्तर अधिकांश स्वाध्याय हेतु निर्धारित हो। इन प्रयोजनों (अर्थात् अध्यापक, अध्ययन कक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, आधुनिक भारतीय साहित्य निर्माण जिसमें आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों सम्बन्धी साहित्य के निर्माण भी सम्मिलित हैं आदि) को उच्च प्राथमिकता दी जाय।

30 अध्यापक

विभिन्न तत्त्व जो शिक्षा के स्तर को प्रभावित करते हैं तथा राष्ट्रीय विकास में योगदान देते हैं उनमें अध्यापक का स्तर, उनकी क्षमता तथा उनका चरित्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अतएव यह आवश्यक है कि प्रतिवर्ष विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में अध्ययन समाप्त करके निकलने वाले कुशाग्र बुद्धि युवकों एवं युवतियों के महत्वपूर्ण अनुपात को शिक्षण-वृत्ति के क्षेत्र में आकर्षित करने के लिए सतत गहरे प्रयत्न किये जाते रहें तथा उन्हें विद्यावान, उत्साही तथा सन्तुष्ट कार्यकर्त्ताओं के रूप में बनाये रखने के लिए आवश्यक कदम उठाये जायें। इस प्रयोजन की उपलब्धि के लिए अनिवार्य है कि हर स्तर पर अध्यापकों को पर्याप्त मानदेय, पदोन्नति के अवसर, सेवानिवृत्ति के समय लाभ तथा वृत्तिक उन्नति के अवसर एवं कार्यों तथा सेवा-सम्बन्धी सन्तोषजनक शर्तों की सुविधा हो।

31 पारिश्रमिक

अध्यापकों का वर्तमान वेतन सामान्यतः अपर्याप्त है तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों की तुलना में कम भी है। गत 15 वर्षों में वेतन सम्बन्धी सुधार हुए हैं, लेकिन वे पर्याप्त नहीं हैं तथा मूल्यों में बढ़ोतरी के कारण वे तरह से नगण्य हैं। अतएव शिक्षकों के पारिश्रमिक में निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्तों के आधार पर मूलभूत वृद्धि करने की आवश्यकता है

(i) विश्वविद्यालय स्तर के अध्यापकों का वेतन अन्य वरिष्ठ सरकारी कर्मचारियों के समान होना चाहिए। प्राथमिक शालाओं के अध्यापकों का वेतनक्रम उन राजकीय कर्मचारियों के वेतन के समान होना चाहिए, जो योग्यता तथा उत्तरदायित्व निर्वहन के दृष्टिकोण से समान हों एवं माध्यमिक शिक्षा स्तर के अध्यापकों का वेतन इन दोनों के बीच में सन्तोषप्रद रूप में निर्धारित किया जाना चाहिए। विभिन्न स्तरों के अध्यापकों के वेतन में उत्तम अन्तर रहना चाहिए।

2 (ii) विश्वविद्यालयों एवं विद्यालय अध्यापकों के लिए न्यूनतम राष्ट्रीय नियम हो। अन्तर्राज्यीय अन्तर को यथासम्भव कम किया जाय। इसी प्रकार अन्तराज्यीय वेतनक्रम भेद को क्रमशः समाप्त कर दिया जाय। उदाहरणार्थ विद्यालय स्तर पर सरकारी, स्थानीय प्राधिकरण द्वारा शासित निजी विद्यालयों के समस्त अध्यापकों के लिए समानता का सिद्धान्त अपनाया जाय विभिन्न संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध महाविद्यालयों के अध्यापकों के लिए एक ही वेतनक्रम निर्धारित किया जाए। अध्यापकों को दिया जाने वाला महँगाई भत्ता भी उस वेतनक्रम के अन्तर्गत कार्य कर रहे अन्य सरकारी कर्मचारियों को मिलने वाले महँगाई भत्ते के समान हो।

(iii) पारिश्रमिक में सुधार योग्यता एवं स्तर सम्बन्धी सुधार में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो।

(iv) हर पाँच वर्ष वेतनक्रम का पुनर्विलोकन किया जाय।

(v) हर स्तर पर पदोन्नति के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों। जिन अध्यापकों ने उत्कृष्ट कार्य का निष्पादन किया है उनके लिए उच्च सम्वर्गों में स्थान रिक्त रखे जायें तथा जो विद्यालय अध्यापक विश्वविद्यालय अध्यापक बनने की क्षमता तथा आवश्यक अभिरुचि का प्रमाण दें उन्हें विश्वविद्यालय अध्यापक बनने का अवसर सुलभ हो। उत्कृष्ट कार्य निष्पादन करने वाले

अध्यापकों के लिए ऐसी व्यवस्था भी हो कि वे अपने वेतनक्रम की अधिकतम सीमा को निर्धारित समय से कम समय में ही प्राप्त कर लें।

1965-66 के मूल्य स्तर को आधार मानकर अध्यापकों के निमित्त निर्दिष्ट वेतनक्रम को परिशिष्ट 1 में विवरण दिया गया है। राज्य सरकारें इन्हें कार्यान्वित कर सकें इसलिए आवश्यक है कि केन्द्र उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दे।

32 अन्य लाभ

अध्यापकों के लिए कल्याण सेवाओं का विकास किया जाय। सरकार एवं अध्यापक संयुक्त रूप से इसमें हाथ बटायें तथा विभाग एवं अध्यापकों के प्रतिनिधि संयुक्त रूप से ही इसका काम संचालन करें।

सेवा निवृत्ति की आयु 60 वर्ष हो तथा योग्य व्यक्तियों के मामले में 65 वर्ष तक की आयु का प्रावधान हो।

समस्त राज्य कर्मचारियों तथा अध्यापकों के लिए सेवा निवृत्ति के समय मिलने वाले लाभ से सम्बन्धित व्यवस्था एक समान हो। अन्तरिम उपाय यह हो सकता है कि त्रिसूत्रीय लाभ योजना का विस्तार सभी पर स्वीकार किया जाय, भविष्य निधि के रूप में जमा पूंजी पर ब्याज की दर में समुचित वृद्धि की जाय और इन योजनाओं के संचालन की विधि को बढ़िया बनाया जाय।

एक योजना ऐसी भी बनाई जाय जिसके अन्तर्गत अध्यापकों को नौकरी के किसी भी स्तर में [illegible] के लिए पांच वर्ष में एक बार रियायती दर पर पास मिले। इसके लिए उसे अपने वेतन के उचित अनुपात में ही पैसा चुकाना पड़े।

प्रत्येक स्तर के विशेषतः महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के लिए आवास स्थानों में पर्याप्त वृद्धि करने के प्रयत्न किये जायें।

शिक्षकों की राष्ट्रीय [illegible] की योजना में विस्तार किया जाय तथा [illegible] अध्यापकों को ठोस [illegible] से बचाया जाय।

33 कार्य एवं सेवा सम्बन्धी शर्तें

अध्यापकों की कार्य एवं सेवा सम्बन्धी शर्तों में सुधार किया जाना चाहिए जो सरकारी, स्थानीय प्राधिकरण [illegible] तथा निजी संस्थाओं के अध्यापकों के लिए एक जैसी हों।

अध्यापकों की शक्षिक स्वतन्त्रता की पर्याप्त सुरक्षा हो तथा वे उन समस्त नागरिक अधिकारों का उपयोग कर सकें जिनके अन्तर्गत चुनावों में भाग लेना भी शामिल है लेकिन ऐसी सामान्य परिपाटी एवं शर्तों के अधीन रहते हुए जो ब्रिटेन फ्रांस अमरिका जैसे लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में विकसित हुई हैं।

अध्यापकों के संगठनों को प्रोत्साहन तथा मान्यता दी जाय और उन्हें इस तरह का अधिकार भी हो कि जिसमें विद्यालय शिक्षा सामान्य तथा अध्यापकों की वृत्तिक शिक्षा एवं उनके वेतन तथा कार्य एवं सेवा सम्बन्धी शर्तों में सम्बन्धित मामलों पर उनकी राय ली जा सके।

प्रत्येक राज्य में शिक्षा सचिव की अध्यक्षता में संयुक्त अध्यापक परिषद् की स्थापना की जाय जिसमें अध्यापक संगठनों के प्रतिनिधि तथा शिक्षा विभाग के अधिकारी भी शामिल हों। कार्य तथा सेवा से सम्बन्धित सभी मामले इन परिषदों की सीमा और कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत हों। ये परिषदें परामर्श देने वाली परिषदें होंगी लेकिन उनकी बैठकों में लिए जाने वाले निर्णयों को साधारणतया स्वीकार किया जाय तथा वेतन एवं भत्ते और कार्य के घण्टों तथा छुट्टी के मामलों में सम्बन्धित निर्णयों का पूर्णाधिकार प्रशासन का ही हो।

31 व्यावसायिक तैयारी

अध्यापकों की व्यावसायिक तैयारी में सम्बन्धित कुछ मुख्य कार्यक्रम निम्नांकित हैं जिन्हें शक्षिक पुनर्रचना के अन्तर्गत मूल रूप समझा जाना चाहिए।

(i) प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय का अध्यापक माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को समाप्त कर चुका हो तथा दो वर्ष का व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त हो। प्रवर माध्यमिक विद्यालय का प्रत्येक अध्यापक उस विषय का स्नातक हो जो विषय उसे पढ़ाने को दिया जाने वाला है तथा जिसने उसने एक-वर्षीय व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया हो। सम्बद्ध महाविद्यालयों के कनिष्ठ व्याख्याताओं की जो योग्यताएँ होनी हैं वही योग्यताएँ प्रवर माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की होनी चाहिये तथा उसने साथ ही प्रशिक्षण प्राप्त हो।

समस्त उच्च प्राथमिक विद्यालयों तथा 200 या 200 से अधिक संख्या वाले बड़े प्रवर प्राथमिक विद्यालयों (सामान्य प्राथमिक स्कूलों)

के प्रधानाध्यापक प्रशिक्षित स्नातक हों। इसी तरह अवर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के अध्यापकों का एक निश्चित अनुपात उतनी योग्यता का हो और उतने वेतनक्रम में काम कर रहा हो, जितने उच्चतर माध्यमिक स्तर के अध्यापक।

समस्त विद्यालयों में इतनी या इससे अधिक योग्यता के अध्यापकों की पूर्ति करने के लिए सामान्य शिक्षा की सुविधाओं मुख्यतः स्नातकोत्तर स्तर के लिए तथा वृत्तिका प्रशिक्षण की सुविधाओं का पर्याप्त विस्तार करना होगा।

(ii) विद्यालय अध्यापकों का प्रशिक्षण देने की वर्तमान प्रणाली में दोष इसलिए है कि जिन विद्यालयों के लिए उन्हें तैयार किया जाता है उनसे सम्पर्क रखे बिना ही प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इसके अलावा अध्यापक प्रशिक्षण देने वाली विभिन्न प्रकार की संस्थाएँ एक दूसरे के सहयोग में नहीं अलगाव में काम करती हैं। इस अलगाव को तोड़ने के लिए शिक्षा को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए तथा, प्रथम एवं दूसरी स्नातकीय उपाधियों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में वैकल्पिक विषय के रूप में शिक्षा विषय का प्रारम्भ किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण प्रसार एवं अनुसन्धान से सम्बन्धित उच्च स्तरीय कार्यक्रमों को विकसित करने के लिए चुनिन्दा विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग की स्थापना की जाय ज्यों ज्यों साधन तथा अध्यापक उपलब्ध हों त्यों त्यों समस्त प्रशिक्षण संस्थाओं को महाविद्यालय स्तर तक उन्नत किया जाय ताकि अध्यापक शिक्षा अन्ततः विश्वविद्यालयों की सीमा में आ जाय। इसके अतिरिक्त चुनिन्दा सम्बोधी विद्यालयों के सक्रिय सहयोग छात्राध्यापकों के लिए सम्पूर्ण प्रशिक्षण की व्यवस्था विद्यालयों में विस्तार सेवाओं के विकास, अध्यापकों के व्यावसायिक संगठनों की स्थापना और सहयोगी विद्यालयों तथा प्रशिक्षण विद्यालयों के कर्मचारी-वर्ग में फेर बदल की व्यवस्था के द्वारा तथा सर्वव्यापक समग्र प्रशिक्षण संस्थाओं के निर्माण के द्वारा भी शिक्षण संस्थाओं के आपसी अलगाव को समाप्त किया जाना चाहिए।

(iii) अध्यापकों की व्यावसायिक तैयारी से सम्बन्धित कार्यक्रमों का स्तर ऊँचा करना महत्वपूर्ण है। इसको पर्याप्त स्तर तक उन्नत करने के लिए आवश्यक है कि विषय ज्ञान से सम्बन्धित विशिष्ट पाठ्यक्रम का संगठन किया जाय व्यावसायिक अध्ययन को पुष्ट बनाया जाय पाठ्यक्रम में सुधार तथा उसका पुनर्निर्धारण किया जाय शिक्षण और मूल्यांकन की नयी तथा

गतिशील पद्धतियां को अपनाया जाय और छात्र शिक्षण में सुधार किया जाय। सेवारत शिक्षा की व्यवस्था, द्वारा चयन की अधिक अच्छी पद्धतियों को लागू करके तथा योग्यता में वृद्धि के माध्यम से अध्यापक प्रशिक्षण के स्तर में सुधार किया जाय और उपयुक्त मात्रा में आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था की जाय। इसके अतिरिक्त समस्त प्रशिक्षण संस्थाएँ शिक्षण शुल्क से मुक्त हों तथा छात्र अध्यापकों को छात्रवृत्तियों के निमित्त अधिक प्रावधान उपलब्ध हों।

(iv) समस्त अध्यापकों को सेवान्तर्गत शिक्षा की पर्याप्त सुविधा हो।

(v) विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नव नियुक्त कनिष्ठ व्याख्याताओं के (शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान के) अनुस्थापन के लिए समुचित व्यवस्था करें।

(vi) प्रत्येक राज्य सभी प्रकार के अध्यापकों से सम्बन्धित अपनी आवश्यकताओं का नियमित रूप से अनुमान लगाये और उनकी सामान्य शिक्षा तथा सेवापूर्व एवं सेवान्तर्गत व्यावसायिक तैयारी सम्बन्धी आवश्यक सुविधाओं को प्रदान करने के लिए एक योजना तैयार करें। ऐसी योजनाएँ इन पूर्ण-कालिक शिक्षा सुविधाओं के साथ-साथ ग्रीष्म-कालीन पाठ्यक्रम और पत्राचार पाठ्यचर्या सम्बन्धी शिक्षा की उचित व्यवस्था भी करें।

(vii) अध्यापक की शिक्षा के विकास तथा इसकी योजना बनाने के लिए प्रत्येक राज्य अध्यापक शिक्षा बोर्ड की स्थापना करे। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग राष्ट्रीय स्तर पर अध्यापक शिक्षा के स्तर तथा उसमें संगति बनाये रखने के उत्तरदायित्व को स्वयं अपने ऊपर ले तथा इस हेतु राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के सहयोग से एक स्थायी समिति का निर्माण करे।

35 विद्यालय पाठ्यचर्या

प्रमुख आवश्यकता यह है कि विद्यालय पाठ्यचर्या में सुधार तथा उसे उन्नत किया जाय, उसमें चल आ रहे निरर्थक तत्वों को दूर किया जाय, उनके ज्ञान पक्ष में वृद्धि की जाय, वांछित कुशलताओं के विकास हेतु तथा सही रुचियों, अभिवृत्तियों एवं मूल्य उत्पन्न करने के लिए समुचित व्यवस्था की जाय।

36 इस सम्बन्ध में दो मुख्य नीतियों को अपनाना होगा

(i) प्रचलन यह है कि राज्य भर के समस्त स्कूलों ने एक सामान्य पाठ्यचर्या अपनायी हुई है। इस प्रकार की बिना सोच वाली व्यवस्था

उन्नति में बाधक सिद्ध होती है, क्योंकि उसका पालन करना कमजोर संस्थाओं के बस का काम नहीं होता तथा दूसरी ओर अच्छी संस्थाओं के लिए यह पाठ्यचर्या कोई चुनौती स्वरूप नहीं होती। अतः आवश्यकता एक ऐसी लचीली व्यवस्था की है जिसके अन्तर्गत पाठ्यचर्या उपलब्ध नेतृत्व के गुणों तथा साधनों से वास्तविक रूप से जुड़ी होगी। तात्पर्य यह है कि एक ही साथ एक से अधिक पाठ्यचर्या अपनाने के साथ-साथ एक ऐसी लचीली प्रशासनिक व्यवस्था भी लागू की जाय जो विद्यालयों को नयी सूझ बूझ के कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करे।

(ii) इसी तरह सर्वमान्य अथवा उन्नत पाठ्यचर्या को सभी संस्थाओं में एक साथ अपनाये जाने की चेष्टा की रीति को भी छोड़ना होगा, क्योंकि इसके लिए न तो प्रशिक्षण द्वारा पर्याप्त संख्या में अध्यापकों की और न सुविधाओं की व्यवस्था होना सम्भव है। अध्यापकों की संख्या तथा उपलब्ध सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए सुधरी हुई पाठ्यचर्या को एक से अधिक विषयों या समग्र रूप में अपनाने की छूट विद्यालयों को दी जानी चाहिए और एक ऐसा सुनियोजित कार्यक्रम भी बनाया जाना चाहिए कि सभी विद्यालय कुछ ही वर्षों में पाठ्यचर्या में आवश्यक सुधार कर सकें। इस अन्तर्वर्ती अवधि में ऐसा ही प्रकार की पाठ्यचर्या के अन्तर्गत परीक्षाएँ ली जाय।

37 इस समय विशेषज्ञता की शिक्षा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की कक्षा 9 से प्रारम्भ हो जाती है यह बहुत जल्दी है। वाञ्छनीय यह है कि जब तक छात्र प्रथम दसवर्षीय विद्यालयी शिक्षा समाप्त न करलें तब तक सभी छात्रों के लिए सामान्य शिक्षा के समान पाठ्यक्रम उपलब्ध कराये जायें एवं इसके बाद ही उच्चतर माध्यमिक स्तर में विशेषज्ञता की शिक्षा प्रारम्भ की जाय। इस प्रस्ताव के अनुसार विद्यालय पाठ्यक्रम का व्यापक स्वरूप परिशिष्ट 2 के अनुरूप होगा।

38 विद्यालय पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान दिया जाना चाहिए—

(i) विद्यालय तथा समाज तथा सभी स्तर की शिक्षा के अभिन्न अंग हों।

(ii) कक्षा 10 की समाप्ति तक सब छात्र छात्राओं की पाठ्यचर्या में बिना प्रकार का भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं है सिवाय उन अवस्थित स्थितियों के जो बालक-बालिका के अनुभव के अन्तर्गत निर्धारित किये जायें तथा शारीरिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा में भी उपयुक्त परिवर्तन किये जा सकते हैं।

(iii) विज्ञान एवं गणित की पाठ्यचर्या में आमूलचूल परिवर्तन किये जायें तथा उसे आधुनिक बनाया जाय।

(iv) इस समय छात्रों पर भाषा सीखने का जो भार है उसे शास्त्रानिर्धारित कम किये जाने की आवश्यकता है। त्रिभाषा सूत्र में सुधार करने तथा भाषा शिक्षण में आधुनिक पद्धतियों को अपनाये जाने की भी आवश्यकता है।

(v) अवर तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर की पाठ्यचर्या दो स्तरों पर निर्धारित की जाय—सामान्य तथा उन्नत (एडवान्ड)।

39 विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रम का पुनर्गठन

विद्यालय स्तर पर तथा प्रथम स्नातक उपाधि के लिए निर्धारित विषयों का आपसी सम्बन्ध कम कड़ा हो तथा छात्र को इस बात की छूट हो कि वह अपनी इच्छा के अनुरूप विषय संयोजन का अपना सके और इस प्रकार उन विषयों को भी ले सके जो उसने विद्यालय-स्तर पर नहीं लिए थे। इसी तरह प्रथम तथा द्वितीय स्नातक उपाधि हेतु लिया जा सकने वाला विषय संयोजन भी उससे अधिक लचीला हो जो सामान्यतः आज प्रचलन में है। यह विषय-संयोजन दोनों ही कला तथा विज्ञान विषयों के लिए आवश्यक है क्योंकि ये विषय जो अब तक एक दूसरे से असम्बद्ध दिखाई देते थे अब अधिक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित लगने लगे हैं। उच्च स्तर की शिक्षा पर तो यह परस्पराश्रित दृष्टि छूट सी रही है।

40 प्रथम स्नातक उपाधि के लिए पाठ्यक्रम दो प्रकार का हो—सामान्य तथा विशिष्ट। सामान्य पाठ्यक्रम के अन्तर्गत छात्र एक ही समान स्तर के तीन विषयों को लेता है—इनमें भी दो श्रेणियाँ होनी चाहियें—उत्तीर्ण तथा प्रवीण। केवल प्रवीण स्तर पर ही विशिष्ट पाठ्यक्रम की व्यवस्था हो। विश्वविद्यालय केवल विशिष्ट पाठ्यक्रमों तथा प्रवीण स्तर के निमित्त सामान्य पाठ्यक्रम की व्यवस्था करें। अध्यापकों की संख्या की तथा प्राप्त सुविधाओं की दृष्टि से ध्यान में रखते हुए सम्बद्ध महाविद्यालय सभी तरह के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था कर सकते हैं। इस नीति को कम लचीला बनाने के लिए सामान्य (प्रवीण) तथा विशिष्ट पाठ्यक्रमों के लिए न्यूनतम प्रवेश संख्या निर्धारित की जानी चाहिए।

41 स्नातकोत्तर उपाधि के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के तीन प्रयोजन होने चाहिए

(i) उच्चस्तरीय विशेषज्ञता तथा अनुसंधान के लिए तैयार करना,

(ii) विद्यालयों के लिए अध्यापकों को तैयार करना, और

(iii) उन छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करना जो इस स्तर पर भी विस्तृत एवं सम्बन्धित क्षेत्रों में रुचि रखते हों और जो बाद में पीएच डी स्तर पर विशेषज्ञता प्राप्त करने का प्रयत्न करें। प्रचलित एक विषयी पाठ्यक्रम के साथ-साथ ऐसे संयोजन-पाठ्यक्रम भी आरम्भ किये जायँ, जिनमें कोई एक मुख्य और एक या दो सहवर्ती अथवा सम्बन्धित विषय सम्मिलित हों।

12 पीएच डी उपाधि प्राप्त करने के इच्छुक छात्रों के चयन में कड़ाई बरती जानी चाहिए तथा मूल्यांकन की पद्धति में सुधार किया जाना चाहिए। किसी द्वितीय विदेशी भाषा जैसे रूसी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषा का अध्ययन वैकल्पिक हो। निर्देशकों की योग्यता तथा आवश्यक सुविधाओं को ध्यानपूर्वक स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए।

13 यह भी वांछनीय है कि एम ए अथवा एम एससी और पीएच डी के बीच का नया [illegible] उपाधि आरम्भ की जाय। इसी तरह यह भी वांछनीय है कि पीएच डी से ऊपर के स्तर की उपाधि जिन विश्वविद्यालयों में न हो वहाँ उसे आरम्भ किया जाय।

14 ऐसे विशिष्ट प्रयत्न भी किये जाने आवश्यक हैं जो कला तथा विज्ञान के क्षेत्रों में अन्तर्सम्बन्धित विषयों के अध्ययन को उन्नत कर सकें। इसके लिए नये विषय संयोजनों तथा विभिन्न संस्थाओं अथवा विभागों के बीच सहयोग के लिए नयी पद्धति तथा नये प्रकार के अध्यापक वर्ग की आवश्यकता होगी। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यकता है कि वर्तमान व्यावसायिक, औद्योगिक तथा अन्य प्रकार की आवश्यकताओं से सम्बन्धित विषयों के प्रशिक्षण के लिए एकवर्षीय (अथवा इससे कम अवधि के) विशिष्ट पाठ्यक्रम आरम्भ किये जायँ। पाठ्यक्रम की प्रकृति अथवा उसकी अवधि को ध्यान में रखते हुए प्रवेश सम्बन्धी योग्यता बी एससी, एम ए, एम एससी अथवा कृषि या इंजीनियरिंग की प्रथम उपाधि होगी। जो इस पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करेंगे उन्हें प्रमाण-पत्र, डिप्लोमा अथवा स्नातक-पत्र प्रदान किया जा सकता है।

15 विद्यालय स्तर पर भी अनुशंसाएँ हों तथा प्रचलित पाठ्यचर्या के समय समय पर पुनर्विलोकन तथा सुधार की आवश्यकता है। यह पुनर्विलोकन बार बार किया जाना चाहिए। इस हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्मित

पुनर्विलोकन समितियों के कार्यक्रम को अधिक शक्तिशाली तथा विस्तृत बनाया जाय।

46 विद्यालय पाठ्य पुस्तकें

शिक्षा के स्तर को उन्नत करने के लिए उच्च प्रकार की पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था-सम्बन्धी कार्यक्रम बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध होगा। अध्यापक निर्देश पुस्तिकाओं तथा अन्य अनुदेशात्मक सामग्री का भी अधिक मात्रा में निर्माण किया जाय। निम्नलिखित उपायों द्वारा इसका विस्तार किया जाना चाहिए

(i) प्रत्येक कक्षा के लिए प्रत्येक विषय में कम से कम तीन या चार स्वीकृत पुस्तकें होनी चाहिएँ तथा अध्यापकों को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वह उनमें से विद्यालय के लिए सर्वोत्तम उपयुक्त पुस्तकें ही चुन सकें। जहाँ विभिन्न प्रकार की पाठ्यचर्या प्रचलित है वहाँ प्रत्येक उपलब्ध पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित बहुत सी पुस्तकों में से चुनाव करने की उसे छूट होनी चाहिए।

(ii) पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण एक सतत् प्रक्रिया है जिसमें प्रारम्भिक उत्पादन प्रयत्न तथा उन्हें अन्तिम रूप देना आदि सम्मिलित हैं। पाठ्य-पुस्तक-निर्माण के लिए अपनाई गयी व्यवस्था प्रत्येक पुस्तक के लिए इन उपायों को अपनाने में समर्थ होनी चाहिए। यह बात भी निश्चित होनी चाहिए कि प्रत्येक पाठ्य पुस्तक का सतत् पुनरीक्षण किया जा चुका है और वह आधुनिकतम जानकारी सम्पन्न है तथा बार बार नहीं तो कम से कम पांच वर्षों में एक बार तो उसका सम्पूर्ण संशोधन कर दिया जाना चाहिए।

(iii) यथासम्भव अधिक क्षेत्रों में अच्छी पाठ्य-पुस्तकें लिखने के प्रयत्नों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। पुस्तकें लिखने के लिए कुछ चुने हुए लेखकों को काम देने के अतिरिक्त अन्य लोगों से भी पाण्डुलिपियाँ तथा प्रस्ताव आमन्त्रित किये जाने चाहिएँ एवं विद्यालयों के उपयोग के लिए सरकार द्वारा चुनी हुई अथवा स्वीकृत पाठ्य पुस्तकों को काम में लाया जाना चाहिए।

(iv) पाठ्य-पुस्तकें लिखने के लिए अध्यापकों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

(v) विश्वविद्यालय एवं विद्वत् समाज को चाहिए कि वे श्रेष्ठ पाठ्य पुस्तकों को समुचित व्यावसायिक मान्यता प्रदान करें।

(vi) लेखकों को पारिश्रमिक देने के सम्बन्ध में उदारनीति अपनायी जानी चाहिए। सरकारी क्षेत्र में तो इसे विशेष रूप से स्थान दिया जाना चाहिए।

17 पाठ्य-पुस्तकों को सुधारने के निमित्त मशीनरी को यदि समुचित रूप से विकसित कर लिया जाता है तो पाठ्य पुस्तकों के सुधार कार्य में सरकार बहुत बड़ा योग दे सकती है। यह कार्य दोनों ही राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर होता रहेगा। प्रत्येक राज्य में एक स्वायत्त संगठन होना चाहिए जो व्यापारिक आधार पर पुस्तकों का निर्माण करवाये। शिक्षा विभाग के सहयोग से इसे न हानि न लाभ के आधार पर कार्य करना चाहिए। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एन सी ई आर टी) राष्ट्रीय आधार पर पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण कर रही है। अपने यहाँ चल रही पाठ्य-पुस्तकों में सुधार करने के लिए राज्य सरकारों को इस कार्यक्रम का पूरा लाभ उठाना चाहिए तथा आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें अपने क्षेत्रों में उपयोग में लाना चाहिए। इसके साथ साथ राष्ट्रीय स्तर पर पुस्तकों के निर्माण के लिए भी व्यापारिक आधार पर एक स्वायत्त संगठन को बनाये जाने की आवश्यकता है। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य होगा उच्च शिक्षा के लिए तकनीकी एवं विज्ञान विषयों से सम्बन्धित हिन्दी या उर्दू में ऐसी पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण करना जिनके लिए विभिन्न राज्यों द्वारा पृथक पृथक प्रयत्न करना लाभप्रद नहीं है। इस संगठन के कार्य का एन सी ई आर टी से सामंजस्य बिठाना होगा। ये दोनों संगठन राज्यस्तरीय संगठनों के पूरक होंगे।

18 उच्च शिक्षा के लिए पाठ्य पुस्तकें एवं अन्य साहित्य

इसी तरह यह आवश्यक है कि उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक पाठ्य पुस्तकें तथा अन्य साहित्य का विशेषकर आधुनिक भारतीय भाषाओं में, निर्माण किया जाय। इस दृष्टिकोण से—

(i) यथासम्भव सार्वजनिक रूप अथवा ब्रिटेन तथा उन्नत देशों के सहयोग से कम कीमतों पर और सहायता-प्राप्त (Subsidised) पाठ्य पुस्तकों के निर्माण की योजना में विस्तार किया जाना चाहिए। उसे प्रथम रूप से विकसित किया जाय

(ii) भारतीय लेखकों द्वारा लिखी हुई पुस्तकों के लिए इसी तरह के उपाय किये जाने की परमावश्यकता है क्योंकि बहुत कम मात्रा में श्रेष्ठ

पाठ्य पुस्तकें खर्चीली होती हैं उनके निर्माण में विदेशी मुद्रा की उलझनों के अतिरिक्त व बौद्धिक विकास के दृष्टिकोण से भी अनुपयुक्त होती हैं। इस में प्रथम श्रेणी की पुस्तकों के निर्माण के लिए आवश्यक साधना एवं योग्यता की कमी नहीं है लेकिन कमी है सुनियोजित एवं सुदृढ़ प्रयत्नों की

(iii) वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण कार्य को गति दी जानी चाहिए और

(iv) ... 10 वर्षों में ही स्नातक स्तर के निमित्त आवश्यक पुस्तकों में से अधिकांश पुस्तकों तथा स्नातकोत्तर स्तर की पुस्तकों जिनमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित पुस्तकें भी सम्मिलित हैं का इस में ही निर्माण किया जाना चाहिए। इन पुस्तकों के निर्माण में विदेशी सामग्री का पूरा लाभ उठाया जाना चाहिए।

19 छात्रों में पुस्तक वितरण

प्राथमिक स्तर के समस्त छात्रों को निःशुल्क पाठ्य पुस्तकों के वितरण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

माध्यमिक विद्यालयों और महाविद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकालयों की स्थापना की जानी चाहिए ताकि प्रत्येक जरूरतमन्द छात्र को पर्याप्त मात्रा में तथा निःशुल्क ... पाठ्य पुस्तकें प्राप्त हो सकें।

प्रत्येक कक्षा के प्रथम दस प्रतिशत कुशाग्र बुद्धि छात्रों को पाठ्य पुस्तकें ही नहीं अपितु अन्य प्रकार की पुस्तकें खरीदने के लिए अनुदान की योजना भी होनी चाहिए। इस योजना को विश्वविद्यालय स्तर से आरम्भ करके फिर विद्यालयों तक विस्तार किया जा सकता है।

20 शिक्षा प्रणाली में सुधार

शिक्षण की आधुनिक पद्धतियों को अपनाये जाने के विषय में पहिले ही विवरण दिया जा चुका है। इन पद्धतियों को प्रभावशाली ढंग से तभी अपनाया जा सकता है जबकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में तदनुरूप सुधार किए जायें। मूल्यांकन की नयी पद्धति के अन्तर्गत यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों पर बाह्य परीक्षाओं का भार कम हो निश्चित परीक्षाओं को इस तरह सुधारा जाय कि वह अधिक उत्तरदायित्व की वास्तविक माप बन जाय तथा छात्र के विकास सम्बन्धी जिन महत्वपूर्ण पक्षों को लिखित परीक्षाओं द्वारा नहीं आँका जा सकता, उनको आँकने के लिए नयी प्रणाली अपनायी जाय।

51 अवर प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 4) की अविभक्त या अवर्गीकृत व्यवस्था के निमित्त अध्यापकों को उचित ढंग से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 5 से 7) से लिखित परीक्षाएँ आरम्भ की जा सकती हैं लेकिन अधिक महत्व मौखिक परीक्षा को दिया जाय। नैदानिक परीक्षाएँ तथा संचितवृत्त (Cumulative Record) पद्धति सरल किन्तु क्रमिक ढंग से आरम्भ की जाएँ। प्राथमिक स्तर पर बाह्य अनिवार्य परीक्षा नहीं होनी चाहिए लेकिन छात्रवृत्तियाँ अथवा योग्यता प्रमाण पत्र देने और योग्यता निर्धारित करने के उद्देश्य से ऐसी सामान्य परीक्षाएँ ली जाय, जो प्रमापीकृत तथा परिष्कृत जाँच पर आधारित हों। प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रम की समाप्ति पर विद्यालय प्रमाण पत्र दें। जिनके साथ संचितवृत्त पत्र लगा हो तथा यदि कोई सामान्य परीक्षा ली गयी हो, तो उसके परिणामों का विवरण भी दिया जाना चाहिए।

52 माध्यमिक स्तर पर दो बाह्य परीक्षाएँ हों—पहली कक्षा 10 के अन्त में और दूसरी कक्षा 12 के अन्त में (जब तक कि विद्यालय पाठ्यक्रम की कुल अवधि 12 वर्ष की नहीं हो जाती इस अन्तवर्ती काल में यह परीक्षा कक्षा 11 के बाद भी ली जा सकती है)। प्रश्न पत्र निर्माताओं की क्षमता में विकास के द्वारा प्रश्न पत्रों को केवल ज्ञान प्राप्ति हो नहीं बल्कि अन्य उद्देश्यों की जाँच के अनुकूल बनाकर प्रश्नों में सुधार करके तथा अंक प्रदान करने की यथानिष्ठ पद्धति अपनाकर अथवा अन्य उपायों से बाह्य परीक्षाओं में सुधार किया जाना चाहिए।

53 किसी निरपेक्ष आधार पर कक्षोन्नति देने के साथ साथ सापेक्षिक आधार पर परीक्षा परिणामों के अनुसार भी श्रेणी निर्धारित की जानी चाहिए। उदाहरणार्थ प्रथम श्रेणी छात्र उन प्रथम 20 प्रतिशत छात्रों में से एक है जिन्होंने परीक्षा में सफलता प्राप्त की है।

54 यह अत्यन्त अनिवार्य है कि परीक्षाओं के समाप्त होने तथा उनके परिणामों की घोषणा के बीच का समय यथासम्भव कम हो। इसके लिए हर सम्भव उपाय अपनाया जाना चाहिए अर्थात् उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच के लिए परीक्षकों को एक ही स्थान पर एकत्रित करना, मशीनों का उपयोग करना, प्रत्येक परीक्षक को दी जाने वाली उत्तर पुस्तिकाओं की संख्या में कमी करना इत्यादि।०

---

० पैरा संख्या 52 व 54 तक बाह्य परीक्षाओं के सम्बन्ध में जो सुझाव दिए गए हैं उन्हें यथोचित परिवर्तन सहित विश्वविद्यालय स्तर पर भी कार्यान्वित किया जाय।

55 राष्ट्रीय मानकों को तीन स्तरों पर स्पष्टतः परिभाषित करने की आवश्यकता है—प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर (कक्षा 8), अवर माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर (कक्षा 10) और उच्चतर माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर (कक्षा 12)। स्थानीय परिस्थितियों तथा विकास के उपलब्ध स्तर का ध्यान में रखते हुए प्रत्येक राज्य सरकार को उक्त तीनों स्तरों पर प्राप्त किये जाने योग्य शैक्षिक मानक निर्धारित करने चाहिए। इन शैक्षिक मानकों को राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत किया जाए तथा तब उस राष्ट्रीय स्तर के शैक्षिक मानकों का निर्धारण किया जाए जिससे निम्न स्तर की शिक्षा सामान्यतया किसी भी राज्य में न दी जाए, यद्यपि कुछ राज्य स्वयं न्यूनतम स्तर से ऊँचा स्तर प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं। विद्यालय, जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय आधार पर प्राप्त किये जाने वाले वास्तविक शैक्षिक मानक या स्तर का मूल्यांकन करने के लिए भी व्यवस्था होनी चाहिए। ये भी प्रयत्न किये जाएँ कि राष्ट्रीय शैक्षिक मानक उत्तरोत्तर उन्नत होते रहें और इस दृष्टिकोण से समय-समय पर ऐसे सुनियोजित स्तरों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाए, जिन्हें विकास की एक निश्चित अवधि में प्राप्त कर लेना है।

56 सभी शैक्षिक संस्थाओं में आन्तरिक जाँच की व्यवस्था का आरम्भ किया जाए। यह व्यवस्था सब तरह से पूर्ण हो तथा इनके अन्तर्गत छात्र के उन पक्षों का मूल्यांकन किया जाए, जिनमें वे भी सम्मिलित हैं, जिनकी बाह्य परीक्षाओं द्वारा जाँच नहीं की जाती है। यह मूल्यांकन विवरणात्मक ही नहीं मात्रात्मक भी हो। बाह्य परीक्षाओं में प्राप्त अंकों को इन परिणामों में साधारणतया नहीं जोड़ा जाना चाहिए। बाह्य परीक्षाओं में प्राप्त अंकों को अलग रखा जाए तथा अन्तिम प्रमाण पत्र में उनका उल्लेख भी कर दिया जाए। आन्तरिक जाँच तथा बाह्य परीक्षाओं में अलग अलग उत्तीर्ण होना आवश्यक होना चाहिए और उनमें प्राप्त श्रेणी भी अलग अलग ही दिखाई जानी चाहिए। प्रतिवर्ष आन्तरिक एवं बाह्य जाँच के बीच सह सम्बन्धों का ध्यानपूर्वक पुनर्विलोकन किया जाए और यह प्रत्येक संस्था के लिए अलग अलग हो। आर्थिक अनुदान देने के लिए शैक्षिक संस्थाओं का वर्गीकरण करते समय इस बिन्दु पर भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। जो संस्थाएँ अपने छात्रों के मूल्यांकन में आवश्यक सावधानी नहीं रखतीं उन्हें न केवल स्तर के दृष्टिकोण से, अपितु आर्थिक सहायता के दृष्टिकोण से भी हानि भुगतनी पड़े। नितान्त पराकाष्ठा के मामलों में उनकी मान्यता अथवा सम्बद्धता को समाप्त कर दिया जाए।

57 परीक्षा सुधार कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए एक समुचित संगठन की आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्तर पर एन० सी० इ० आर० टी० इस कार्य में विद्यालयों को नेतृत्व प्रदान कर रही है। मानक या स्तर निर्धारण करने, उनको बनाये रखने, उनकी जाँच करने तथा उसमें संशोधन के लिए प्रत्येक राज्य में एक मूल्यांकन संगठन स्थापित करना होगा। यह संगठन स्वतन्त्र संस्था के रूप में होना चाहिए यदि संस्था स्वायत्त हो तो और भी अच्छा है। जिस किसी को भी जरूरत हो उसे इसकी सेवाओं से लाभ उठाने का अवसर होना चाहिए। नीचे के स्तर पर जिला शिक्षाधिकारी विद्यालयों में मूल्यांकन सुधार के निमित्त कार्यों के लिए उत्तरदायी हों तथा उन्हें इस कार्य के लिए कम से कम एक विशेषज्ञ प्रशिक्षित अधिकारी की सहायता प्राप्त हो। विश्वविद्यालय स्तर पर परीक्षाओं में सुधार करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में एक केन्द्रीय संगठन बनाया जाय तथा विश्वविद्यालयों में तदनुरूप संगठनों का निर्माण किया जाना चाहिए। जो विश्वविद्यालय इस कार्य में रुचि लें तथा पहल करें उनसे आरम्भ करके इस कार्यक्रम को दूसरे विद्यालयों में क्रमिक रूप से कार्यान्वित किया जाय।

58 बाह्य परीक्षाओं के बन्धन से उन्नतिशील संस्थाओं को मुक्त किया जाना चाहिए।

(i) विद्यालय स्तर की श्रेष्ठ संस्थाओं को यह अधिकार प्राप्त हो कि अपने छात्रों की जाँच वे स्वयं करें तथा कक्षा 10 (या कक्षा 11 और 12) की अन्तिम परीक्षा वे स्वयं लें जिसे विद्यालय शिक्षा के राज्य बोर्ड द्वारा ली जाने वाली बाह्य परीक्षा के समान समझा जाय। विद्यालय की संस्तुति प्राप्त करने पर विद्यालय शिक्षा का राज्य बोर्ड सफल प्रत्याशियों को प्रमाणपत्र प्रदान करेगा। विद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित राज्य बोर्ड एक समिति का निर्माण करे जो भली प्रकार सोच विचार कर ऐसे स्कूलों के चयन के लिए मानदण्ड बनाये। इन विद्यालयों को छूट हो कि वे अपने स्वयं का पाठ्यचर्या तैयार कर सकें अपनी पाठ्यपुस्तकें निर्धारित कर सकें, और बिना किसी बाह्य बाधा के नये प्रयोगों को सम्पन्न कर सकें।

(ii) विश्वविद्यालय स्तर पर भी इसी प्रकार का कार्यक्रम सम्पन्न किया जाय। जिन्होंने अपना सुधार करके या विशेष क्षमता प्रदर्शित की है उन श्रेष्ठ महाविद्यालयों को भी स्वायत्तता प्रदान की जाय। इन महाविद्यालयों को अधिकार हो कि वे स्वयं अपने प्रवेश सम्बन्धी नियम बना सकें, स्वयं अपना पाठ्यक्रम निर्धारित कर सकें स्वयं अपनी परीक्षायें संचालित

कर सकें आदि। जिस विश्वविद्यालय से यह महाविद्यालय सम्बद्ध है, उसका काम होगा सामान्य परिवीक्षण तथा उपाधि वितरण। इन महाविद्यालयों को यह विशेषाधिकार हमेशा के लिए नहीं दिया जा सकता। इसे प्राप्त करने के लिए तो उन्हें सतत् प्रयत्न करने होंगे और क्षमता एवं मान्यता का प्रदर्शन करना होगा। स्थिति का ध्यानपूर्वक जाँच करने के बाद यदि यह पता लगे कि किसी महाविद्यालय के स्तर में गिरावट आने लगी है, तो विश्वविद्यालय को अधिकार होगा कि वह उसकी स्वायत्तता सम्बन्धी अधिकार को समाप्त कर दे। विश्वविद्यालय के संविधान में ऐसे स्वायत्तता प्राप्त महाविद्यालयों को मान्यता देने का प्रावधान किया जाय तथा ऐसे प्रयत्न किये जाने चाहियें कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक कम से कम 50 प्रतिशत उत्तम महाविद्यालय इस कोटि में आ जायें।

59 शैक्षिक संस्थाओं के आकार तथा अवस्थिति सम्बन्धी योजना

पिछले कुछ वर्षों में छोटी तथा आर्थिक रूप से हानिप्रद संस्थाओं में वृद्धि हुई है। शिक्षा के सभी स्तरों पर इन संस्थाओं ने अकुशलता का परिचय दिया है। यह आवश्यक है कि इस बढ़ती हुई कमजोरी में सुधार किया जाय तथा समस्त शैक्षिक संस्थाओं के स्थान के सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक योजना बनाया जाय ताकि परस्पर व्यापी अतिक्रमण, द्विरावृत्ति तथा अपव्यय को रोका जा सके और अधिक कुशल तथा नाममात्र संस्थाओं को स्थापित किया जा सके। प्राथमिक स्तर की संस्थाओं के बारे में तो इस विचार को अधिक प्राथमिकता नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि प्राथमिक संस्थाएँ तो इस दृष्टिकोण से खोली जाती हैं कि व्यावहारिक रूप से जितना सम्भव हो प्राथमिक शालाएं बालकों के घर के निकटतम खोली जाय, लेकिन माध्यमिक स्तर पर यह विचार अधिक महत्त्व रखता है तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तो यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। अतएव यह आवश्यक है कि सभी कोटि की शैक्षिक संस्थाओं के स्थान निर्धारण के सम्बन्ध में सुविचारित मापदण्ड बनाया जाय और इस मापदण्ड के आधार पर प्रत्येक जिले के लिए पृथक रूप से आगामी 10-15 वर्षों के शैक्षिक विकास के सम्भावित कार्यों की योजना तैयार की जाय। ऐसी योजनाओं के निर्माण तथा समय समय पर अपनाया जाने वाली पुनरीक्षण सम्बन्धी प्रक्रिया को निर्धारित किया जाना चाहिए। इन योजनाओं के आधार पर वर्तमान स्थिति का समर्थन किया जाय एवं नयी संस्थाएँ कहाँ खुलें यह तय किया जाना चाहिए।

60 सुविधाओं की व्यवस्था

शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षा का विस्तार प्राप्त साधनों की तुलना

में कहीं अधिक तीव्र गति से ह्रास के कारण बहुत-सी शैक्षिक संस्थाओं में सुविधाओं सम्बन्धी स्थिति बहुत ही असंतोषजनक है। वे उन न्यूनतम आवश्यकताओं की बहुधा पूर्ति भी नहीं करतीं, जो शिक्षा विभाग और विश्वविद्यालयों के प्रचलित नियमों में निर्दिष्ट हैं। बहुत सी संस्थाएँ कक्षाओं में छात्रों की संख्या आवश्यकता से कहीं अधिक होने की ओर प्रवृत्त हैं। शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इस स्थिति में सुधार किये जाने की आवश्यकता है।

विद्यालय स्तर पर कक्षा में छात्रों की अधिकतम संख्या निर्धारित की जानी चाहिए तथा इसका कठोरता से पालन किया जाना चाहिए (यह संख्या अवर प्राथमिक स्तर पर 50 उच्च प्राथमिक स्तर पर 45 तथा माध्यमिक स्तर पर 40 हो)। विश्वविद्यालय स्तर पर विश्वविद्यालयों को उपलब्ध सुविधाओं का ध्यान में रखते हुए छात्रों के प्रवेश सम्बन्धी नियम विस्तृत रूप से निर्धारित करने चाहिएँ तथा उनका दृढ़ता से पालन करना चाहिए।

उपकरण, पुस्तकालय तथा प्रयोगशालाओं सम्बन्धी सुविधाओं की समुचित व्यवस्था बहुत महत्त्व रखती है तथा इन सुविधाओं के सम्बन्ध में उपयुक्त स्तर को आवश्यक रूप से बनाए रखा जाना चाहिए।

स्वास्थ्यपूर्ण तथा पर्याप्त साज सामान से सम्पन्न भवनों की व्यवस्था को बहुधा कम महत्त्व दिया गया है। स्थानीय भवन निर्माण सामग्री के उपयोग, मितव्ययिता, भवन के आकार तथा निर्माण में सादगी एवं पवित्रता के द्वारा व्यय में अधिकतम कटौती करके ही भवन एवं अन्य उक्त सुविधाओं को जुटाना होगा। इस हेतु स्थानीय समाज से प्राथमिक स्तर पर विशेषतः सहयोग लिया जाना चाहिए।

शैक्षानुभव सम्बन्धी कार्यक्रम को भी इस तरह से चलाया जा सकता है कि इसके परिणामस्वरूप शिक्षण के लिए कुछ आवश्यक उपकरण तथा सहायक साधन आसानी से प्राप्त हो जायँ। अध्यापकों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वे स्थानीय सामग्री से कम कीमत के शिक्षण सहायक साधन तैयार कर सकें। अधिक मूल्यवान तथा जटिल उपकरणों के सम्बन्ध में ऐसा उपयुक्त कार्यक्रम को अपनाया जाना चाहिए कि जिससे अनेक संस्थाओं का समूह उन्हें समानरूप से काम में ला सकें।

साधनों की सीमितता के कारण यदि कोई कठोर निर्णय लेना ही पड़े, तो कम से कम प्राथमिक स्तर की शिक्षा में उदारता से काम लिया जाय जहाँ कि विस्तार को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन माध्यमिक

और मुख्यतः उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सुविधा-सम्बन्धी न्यूनतम आवश्यकताओं में किसी प्रकार की कमी नहीं की जानी चाहिए और यदि बहुत ही आवश्यक हो, तो नयी संस्थाओं की स्थापना तथा प्रवेश संख्या में वृद्धि पर समुचित नियन्त्रण रखा जाना चाहिए।

61 छात्र सेवाएँ

छात्र सेवाएँ केवल कल्याण कार्यक्रम नहीं हैं अपितु वे शिक्षा का अभिन्न अंग हैं क्योंकि स्तर को बनाये रखने की समस्या मुख्यतः उन्हीं पर आधारित है। पाठ्य-पुस्तकों के निःशुल्क वितरण के सम्बन्ध में पहले ही जिक्र किया जा चुका है। इसके साथ-साथ कई और प्रकार की सेवाओं की भी आवश्यकता है।

62 उदाहरण के लिए विद्यालय स्तर पर यह आवश्यक है कि निर्देशन तथा परामर्श सेवाएँ और आरम्भ की जाएँ। प्राथमिक विद्यालयों में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सीधे सरल तरीकों को अपनाया जाना चाहिए—जैसे अध्यापकों को नैदानिक जाँच तथा वैयक्तिक अन्तर समस्याओं की जाँच सम्बन्धी प्रशिक्षण देना एवं आगे की शिक्षा के सम्बन्ध में चुनाव करते समय छात्रों तथा माता पिताओं की सहायता करना। माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवाएँ ऐसी होनी चाहियें जो किशोर छात्रों की योग्यता तथा उनकी क्षमताओं एवं रुचियों के विकास में सहायता करें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक ऐसा न्यूनतम कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत कुछ संस्थाएँ एक ही परामर्शदाता की सेवाओं का मिल जुलकर लाभ उठा सकें और कुछ चुनिंदा विद्यालयों में व्यापक निर्देशन कार्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिएँ। विद्यालय स्वास्थ्य सेवाएँ (जिनमें विद्यालय द्वारा संचालित की जाने वाली भोजन-व्यवस्था भी सम्मिलित है) यथासम्भव अधिक विकसित की जानी चाहिए। कम से कम जरूरतमन्द छात्रों के लिए तो यह व्यवस्था अनिवार्य रूप से होनी चाहिए तथा योग्य छात्रों के लिए कपड़े जुटाये जाने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

63. विश्वविद्यालय स्तर पर सत्रारम्भ में नये छात्रों का सामञ्जस्य सम्भव बनाने के लिए छात्र-सेवाओं के अन्तर्गत अनुस्थापन कार्यक्रम सम्मिलित किये जायें। प्रत्येक छात्र किसी शिक्षक सलाहकार (शिक्षण संघ या संकाय का प्रवर सदस्य) से सम्बद्ध होना चाहिए, जो छात्र को अपना अध्ययन कार्यक्रम संगठित करने तथा तत्सम्बन्धी योजना बनाने में सम्मति दें। विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में उपर्युक्त स्वास्थ्य सेवाएँ विकसित की जानी

चाहिएँ जिनमें स्वास्थ्य शिक्षा भी सम्मिलित हो। निर्देशन एवं परामर्श सेवाएँ भी उपलब्ध की जानी चाहिएँ। प्रत्येक 1000 छात्रों पर कम से कम एक परामर्शदाता नियुक्त किया जाना चाहिए। सूचना एवं काम दिलाऊ केन्द्र मयुक्त रूप से स्थापित किए जाने चाहिए। केवल अध्ययन अवधि में ही नहीं किन्तु अवकाश अवधि में भी छात्रों के लिए सुसम्पन्न एवं विविध प्रकार की सह पाठ्य गतिविधियों को नियोजित किया जाना चाहिए। छात्रावास में रहने की सुविधा का अधिक उत्तर बढाया जाना चाहिए (स्नातकोत्तर स्तर पर कुल भर्ती के 25 प्रतिशत स्थान अधिस्नातक स्तर पर कुल भर्ती के 50 प्रतिशत स्थान उपलब्ध कराये जाने का लक्ष्य निर्धारित किया जाए)। छात्रावास के बाहर रहनेवाले छात्रों में से कम से कम 25 प्रतिशत छात्रों के निमित्त कम खर्चीले विश्रामालयों अथवा दिवस अध्ययन केन्द्रों (डे स्टडी सेन्टर्स) की स्थापना की जानी चाहिए। समस्त विश्वविद्यालयों अथवा बड़े महाविद्यालयों में एक एसा पूर्णकालिक छात्र कल्याण डिनमाध्यक्ष होना चाहिए जो छात्र कल्याण सेवाओं से सम्बन्धित प्रशासन की देखभाल करे।

64 प्रतिभाओं की खोज एवं विकास

यह अनिवार्य है कि शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रों की वैयक्तिक भिन्नताओं पर पर्याप्त ध्यान दिया जाय तथा पिछड़े हुए एवं कुशाग्र बुद्धि छात्रों के सम्बन्ध में विशेष कार्यक्रम निर्धारित किए जाएँ। कुशाग्र बुद्धि प्रतिभावान छात्रों से सम्बन्धित कार्यक्रम की खोज की परिस्थितियों में विशेष महत्त्व है क्योंकि राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक शाखा में प्रशिक्षित जन बल का अभाव तीव्र रूप से अनुभव किया जा रहा है और शायद यही वह सबसे बड़ा कारण है जो हमारे देश की प्रगति में बाधक है। मूल बुद्धि प्राय सब में समान रूप से व्याप्त होती है और यदि इस बुद्धि को समय रहते खोज निकाला जाय तथा उसे विकसित किया जाय तो हमारे देश की विशाल जन संख्या निश्चय ही हमारे लिए एक महत्त्वपूर्ण नियामत हो सकती है।

65 इस समय उपलब्ध प्रतिभाओं का न्यूनतम अंश ही खोजा व विकसित किया जाता है। अधिकांश घरों में वातावरण अनुकूल नहीं होता। अधिकांश प्रतिभावान विद्यार्थी या तो प्राथमिक शालाओं में प्रवेश ही नहीं लेते हैं या इतने समय तक नहीं ठहर पाते हैं कि वे उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त कर सकें। किसी परीक्षा में प्राप्त कुल अंकों के आधार पर नैसर्गिक प्रतिभाओं का निर्णय करने की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में तो प्रतिभा का पता ही नहीं लग पाता, इसके अलावा विशे

प्रतिभा का पता लग भी जाता है उसे विकसित करने के लिए या तो विशिष्ट कार्यक्रम हैं ही नहीं और यदि हैं भी तो वे अपर्याप्त हैं।

66 इन सबको बदलना होगा क्योंकि शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था के मुख्य उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह भी है कि प्रतिभा का पता लगाया जाय तथा उसका विकास किया जाय। शैक्षिक अवसरों के समकरण (Equalisation) सम्बन्धी कार्यक्रम, जिन पर आगे के पृष्ठों में विचार विमर्श किया जायगा, इस दिशा में बहुत सहायक हो सकते हैं। उदाहरणार्थ प्रत्येक बालक के लिए पाँच वर्षों तक की अच्छी और प्रभावशाली प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था से यथासम्भव विस्तृत सीमा तक प्रतिभा का पता लगाने में बहुत सहायता मिलेगी। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर 10 से 15 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने के विशाल कार्यक्रम को लागू करने पर आश्वस्त हुआ जा सकेगा कि गरीबी के कारण कोई भी नैसर्गिक प्रतिभा-सम्पन्न बालक उच्चतम शिक्षा-प्राप्ति से वंचित नहीं होगा यदि वह शिक्षा प्राप्त करने के योग्य है। एक सुगठित कार्यक्रम के द्वारा यह सम्भव हो सकेगा कि नैसर्गिक प्रतिभासम्पन्न छात्र उपलब्ध श्रेष्ठतम संस्थाओं में अध्ययन कर सकें। इसके साथ ही यह आवश्यक है कि अधिक क्षमतावान छात्रों के लिए यथासम्भव अधिक विद्यालयों में और खासकर [illegible] विद्यालय में सुसम्पन्न कार्यक्रम आरम्भ किए जाएँ। इस उद्देश्य के लिए या तो प्रत्येक शैक्षिक संस्था पृथक् रूप में या ऐसी संस्थाओं के समूह आपसी सहयोग से ऐसे बाह्य कार्यक्रमों को संगठित करें जैसे—ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम, प्रयोगशालाओं तथा संग्रहालयों का अवलोकन जिस प्रकार के कार्यों के लिए छात्र विशेष योग्यता अथवा रुचि प्रदर्शित करते हैं उन कार्यों में उच्च स्तर पर कार्यरत अध्यापकों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध आदि।

67 यद्यपि प्रतिभा की खोज एक सतत् प्रक्रिया है जो हर स्तर पर सक्रिय रखी जानी चाहिए, तथापि माध्यमिक स्तर पर यह कार्य करना सबसे नाजुक है। अतएव विश्वविद्यालयों के सहयोग से राज्य शिक्षा विभाग माध्यमिक स्तर पर प्रतिभा की खोज से सम्बन्धित विशेष कार्यक्रमों को विकसित करें।

68 भारतवर्ष में गणित के क्षेत्र में प्रतिभा के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए कुछ तो इसलिए कि विज्ञान एवं अनुसंधान के क्षेत्र में गणित का महत्त्व बढ़ता जा रहा है और कुछ इसलिए भी कि हमारे देश की महान् परम्परा भी इस क्षेत्र में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। आगामी पाँच-दस वर्षों में तीन या चार विश्वविद्यालयों में गणित सम्बन्धी उच्च अध्ययन-केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिएँ। विश्वविद्यालयों के गणित सम्बन्धी मुख्य -

विभागों में से एक विभाग को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वह विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के अध्यापकों के ज्ञान व समझ को उन्नत करने के लिए गणित में क्रमबद्ध अधिगम कार्यक्रम (प्रोग्रेम्ड लर्निंग) की सम्भावनाओं की खोज में सक्रिय रुचि लें। जिन विश्वविद्यालयों में गणित तथा भौतिक विज्ञान के विभाग सर्वसाधनसम्पन्न तथा हर तरह से विकसित हैं, उन विश्वविद्यालयों के सहयोग से गणित में असाधारण क्षमतावान छात्रों के निमित्त निकट भविष्य में एक अथवा दो विशिष्ट प्रकार के आवास माध्यमिक विद्यालयों को स्थापित किया जाना चाहिए। यदि इन तथा ऐसे ही कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया जाता है तो आगामी दो दशकों में यह सम्भव हो सकेगा कि विश्वव्यापी स्तर पर गणित के क्षेत्र में भारतवर्ष का नाम लिया जाने लगे।

69 ऐसी श्रेष्ठ प्रतिभा के विकास सम्बन्धी अन्य क्षेत्रों का भी पता लगाया जाना चाहिए तथा तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों को विकसित किया जाना चाहिए।

70 बहुत ही अधिक नैसर्गिक प्रतिभासम्पन्न छात्रों के आगामी शिक्षा सम्बन्धी सम्पूर्ण दायित्व राज्य को स्वयं वहन करने चाहिएँ। पाठ्यक्रम अध्ययन की अवधि, प्रवेश योग्यता आदि से सम्बन्धित नियमों तथा उपनियमों को भी उपयुक्त मात्रा में उदार बनाना होगा।

71 शैक्षिक संस्थाओं में सुधार के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम

समस्त शैक्षिक संस्थाओं के शैक्षिक स्तर को उन्नत करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना जिनके अन्तर्गत प्रत्येक शैक्षिक संस्था अपनी क्षमता के अनुरूप सर्वोत्कृष्ट परिणाम प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्न करती रहे। कुछ मुख्य कार्यक्रमों का जिक्र पहले ही किया जा चुका है वे हैं—निरन्तर कठिन श्रम करने के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करना, अध्यापकों का गुणात्मक सुधार, विद्यार्थी सेवाओं की व्यवस्था की समस्या तथा गतिशील पाठ्यक्रम के लिए उसका पुनर्गठन—ये कार्यक्रम शैक्षिक संस्थाओं में सुधार सम्बन्धी राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम में बहुत अधिक सहायक होंगे। इसे कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व मुख्य परिवीक्षण • पर हो।

72 इस दृष्टि से निम्नलिखित कदम उठाये जाने चाहिएँ

(i) प्रत्येक संस्था स्वयं में एक सम्पूर्ण इकाई समझी जानी चाहिए तथा अपनी ही शक्ति से अपना विकास करने में उसे सहायता दी जानी चाहिए।

• इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में आगामी खण्ड में विचार किया गया है।

इस उद्देश्य से अपने अनुकूलतम उपयोग तथा उन्नति के लिए इस स्वयं का विकासोन्मुख कार्यक्रम बनाना चाहिए।

(ii) इन योजनाओं के अन्तर्गत भौतिक साधनों को बढ़ाने पर ही नहीं अपितु मानवीय प्रयत्नों को अभिप्रेरित करने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए, ताकि वे अपने सर्वोत्तम प्रयत्नों के द्वारा शिक्षा में सुधार कर सकें।

(iii) दीर्घकालिक प्रयत्नों को एक निश्चित अवधि तक कार्यान्वित करने के प्रयत्नों की मात्रा पर इस कार्यक्रम की सफलता निर्भर करती है।

(iv) सभी महत्वपूर्ण कोटि की शैक्षिक संस्थाओं के लिए दो तरह का मूल्यांकन मानदण्ड बनाया जाना चाहिए—न्यूनतम तथा अनुकूलतम। आरम्भ में सम्बन्धित संस्थाओं द्वारा स्वयं मूल्यांकन के लिए और बाद में विश्वविद्यालयों या विभागों द्वारा आवधिक निरीक्षण के अंश स्वरूप इन मानदण्डों का उपयोग किया जाना चाहिए। इस मानदण्ड के आधार पर शैक्षिक संस्थाओं को त्रिसूत्री कार्यक्रम के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है

(अ) अनुकूलतम स्तर की अथवा उससे ऊपर की संस्थाएँ,

(ब) न्यूनतम स्तर की अथवा उससे ऊपर की, लेकिन अनुकूलतम स्तर के नीचे की संस्थाएँ, और

(स) न्यूनतम स्तर से नीचे की संस्थाएँ।

(v) स कोटि की प्रत्येक संस्था को कम से कम न्यूनतम स्तर तक उन्नत करने के प्रयत्न किए जाने चाहिएँ—साथ ही साथ 'अ' कोटि की संस्थाओं को श्रेष्ठता की और अधिक ऊँचाइयों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहायता अनुदान सम्बन्धी नियमों में विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए।

73 इस समय शैक्षिक संस्थाओं को सहायता देने के सम्बन्ध में सामान्य नीति समानता पर आधारित है जिसके पीछे सिद्धान्त यह है कि 'या तो प्रत्येक प्रगति करे या कोई भी न करे'। इन परिस्थितियों में होता यह है कि व्यावहारिक स्तर पर कोई भी संस्था प्रगति नहीं करती। भौतिक वस्तुओं तथा जन बल सम्बन्धी साधनों की परिसीमा को दृष्टिगत रखते हुए आवश्यक है कि शिक्षण-संस्थाओं के विकास में चयन पद्धति को अपनाया जाय। समस्त शैक्षिक संस्थाओं के सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम के प्रथम चरण के रूप में आगामी दस वर्षों में सभी स्तर का कम से कम 10 प्रतिशत संस्थाओं का अनुकूलतम स्तर (या उससे अधिक) तक उन्नयन किया जाना चाहिए। प्राथमिक-स्तर

पर ये 'गुणवत्ता' संस्थाएँ देश के हर भाग में समान रूप से वितरित होनी चाहिएँ। माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में कम से कम श्रेष्ठ माध्यमिक विद्यालय तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्येक जिले में कम से कम एक अच्छा महाविद्यालय विकसित किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर यह वांछनीय है कि पाँच या छः चुनिंदा विश्वविद्यालय यथासम्भव उच्चतम स्तर तक विकसित किये जाएँ। *

74 नव परिवीक्षण

यदि उक्त प्रकार के कार्यक्रमों को उपयुक्त बनाना है तो यह आवश्यक है कि राज्य शिक्षा विभागों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा महाविद्यालयों तथा विद्यालयों के परिवीक्षण के सम्बन्ध में अपनायी गयी प्रचलित धारणा को बदलना होगा। यदि नव परिवीक्षण की मुख्य विशेषता होगी उसका लचीलापन, इस निम्न श्रेणी की संस्थाओं का सहयोग तथा निर्देशन देना होगा सामान्य श्रेणी की संस्थाओं की उन्नति के लिए दिशासूचक रेखा खींचनी होगी तथा अच्छी संस्थाओं को प्रयोग करने की स्वतन्त्रता देना होगी। इसका मुख्य कार्यक्रम उतना संस्थाओं को नियन्त्रण में रखना नहीं होगा जितना उनकी सहायता करना तथा उन्हें निर्देशन एवं विस्तार सेवाएँ उपलब्ध कराना।

75 नव परिवीक्षण को विद्यालय-स्तर पर सम्भव बनाने के लिए कुछ कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना होगा जिनमें निम्नलिखित कार्यक्रम भी सम्मिलित हैं :

(i) विभागीय संगठन के अन्तर्गत जिला कार्यालय को मुख्य इकाई मान कर विद्यालयों तथा विभाग में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किये जाने चाहिएँ।

(ii) परिवीक्षण काम प्रशासन से पृथक् किया जाना चाहिए ताकि जिला शिक्षा अधिकारी और उसका कर्मचारी-वर्ग उचित प्रकार के परिवीक्षण पर ध्यान केन्द्रित कर सकें अर्थात् शिक्षण में सुधार, अध्यापकों को निर्देशन उनके लिए सेवारत कार्यक्रमों का गठन तथा विद्यालयों के निमित्त विस्तार सेवा की व्यवस्था।

(iii) वर्तमान तथा चयन-पद्धति में सुधार करके परिवीक्षण अधिकारियों में गुणात्मक सुधार किया जाना चाहिए। उन्हें समुचित प्रशिक्षण भी देना होगा।

---

* इस महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट समस्या पर भाग के अन्त में विस्तार-पूर्वक विचार किया जायगा।

(iv) प्रधानाध्यापकों को भी परिवीक्षण कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। उनका चयन ध्यानपूर्वक करना होगा तथा उनके लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्धारित किये जाने चाहिएँ।

7.6 इस समय प्रत्येक विद्यालय पृथक् रूप से कार्य करते हैं और वे सीधे केवल विभाग से ही सम्बन्धित होते हैं। इसकी अपेक्षा यह अधिक वांछनीय होगा कि कुछ विद्यालयों को जोड़कर संगम (जो छोटे तथा आसानी से व्यवस्थित हों ऐसे कई विद्यालय समूह, जिनके बीच की दूरी सहजगम्य हो) बनाये जाएँ ताकि संगम के अन्तर्गत विभिन्न विद्यालयों के अध्यापक अपना एक छोटा समूह बना सकें जो प्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर काम कर सकेगा और जो योजना तथा निर्देशन सम्बन्धी विशेष क्षमताओं से सम्पन्न होगा। प्रत्येक संगम में एक माध्यमिक विद्यालय हो जिसके अन्तर्गत निकट पड़ोस के चार या पाँच उच्च प्राथमिक विद्यालय हों तथा प्रत्येक उच्च प्राथमिक विद्यालय पड़ोस के चार या पाँच अवर प्राथमिक विद्यालयों का केन्द्र हो। प्रत्येक संगम के लिए समस्त उच्च प्राथमिक शालाओं के प्रधानाध्यापकों की एक समिति होनी चाहिए जिसका अध्यक्ष केन्द्रीय माध्यमिक विद्यालय का प्रधानाध्यापक हो। इसी तरह प्रत्येक उच्च प्राथमिक विद्यालय में निम्न प्राथमिक विद्यालयों के लिए एक इसी तरह की समिति होनी चाहिए। इस विद्यालय संगम के अन्तर्गत सभी विद्यालय सामूहिक रूप में काम करेंगे तथा उन समितियों के माध्यम से उक्त विद्यालयों के अध्यापक अपनी सभी समस्याओं के सुनियोजित विकास के लिए उत्तरदायी होंगे।

7.7 विद्यालय संगम प्रभावशाली रूप से काम कर सकें इसलिए आवश्यक है कि इन्हें पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिएँ। उदाहरणार्थ—

(i) मूल्यांकन की अधिक अच्छी पद्धतियों का आरम्भ करने तथा छात्रों को एक कक्षा से दूसरी कक्षा में अथवा एक विद्यालय स्तर से दूसरे विद्यालय स्तर में प्रोन्नति देने से सम्बन्धित नियमों को कार्य रूप देने के सम्बन्ध में विद्यालय संगम को एक इकाई समझा जाय।

(ii) संगम के अन्तर्गत सभी विद्यालयों को संयुक्त रूप से उपकरण सम्बन्धी तथा अन्य सुविधाएँ दिया जाना सम्भव होना चाहिए। इनके अन्तर्गत एक प्रोजेक्टर तथा एक जनरेटर भी सम्मिलित है जिन्हें एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में ले जाया जा सके। इसी तरह प्रत्येक केन्द्रीय उच्च विद्यालय में एक सुव्यवस्थित प्रयोगशाला हो सकती है, जहाँ अवकाश या छुट्टी के दिनों में संगम के आनुषंगिक प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों को प्रयोग कार्य अथवा

प्रदर्शन के लिए लाया जा सके। केन्द्रीय उच्च विद्यालयों के अन्तर्गत अध्यापकों व छात्रों के निमित्त एक ऐसे परिभ्रमण पुस्तकालय की भी व्यवस्था की जा सकती है जिससे पुस्तकें पड़ोस के विद्यालयों को भेजी जा सकें। विशेष योग्यता प्राप्त अध्यापकों की सेवाओं का भी सभी विद्यालयों द्वारा लाभ उठाया जा सकता है। उदाहरणार्थ प्राथमिक विद्यालयों में शारीरिक अथवा कला शिक्षा के लिए पृथक पृथक अध्यापकों का नियुक्त किया जाना सम्भव नहीं है, लेकिन ऐसे अध्यापकों को उच्च विद्यालयों में नियुक्त किया जाता है, और यदि सुनियोजित रूप से व्यवस्था की जाय, तो यह सम्भव होना चाहिए कि प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का पथ प्रदर्शन करने तथा उनके छात्रों के साथ कुछ समय व्यतीत करने में भी उनकी सेवाओं का लाभ उठाया जा सके।

(iii) विद्यालय संगम का यह महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वह सामान्यतः अध्यापकों को अनवरत शिक्षा देने तथा मुख्यतः कम योग्य अध्यापकों को अधिक योग्य बनाने का काम करें।

(iv) संगम के अन्तर्गत विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों को मिल जुल कर विचार विमर्श द्वारा विकास सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्तों का निर्णय लेना चाहिए ताकि जिनके अनुसार प्रत्येक विद्यालय अपने स्वयं के कार्यक्रम की योजना बना सके।

(v) एक या दो अवकाश भारग्राही अध्यापकों का केन्द्रीय उच्च विद्यालय से सम्बद्ध करना भी सम्भव हो सकेगा ताकि जब और जहाँ आवश्यकता हो, तो उन्हें संगम के अन्तर्गत विद्यालयों में भेजा जा सके।

(vi) नयी पाठ्य-पुस्तकों, अध्यापक निर्देश पुस्तिकाओं तथा शिक्षण सहायक सामग्री को परखने एवं उनका मूल्यांकन करने में कुछ चुनिन्दा विद्यालय संगमों का उपयोग किया जा सकता है।

(vii) विद्यालय संगम को यह अधिकार भी दिया जा सकता है कि वह निर्धारित परिसीमाओं में तथा जिला शिक्षा अधिकारी की स्वीकृति से प्रचलित निर्धारित पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम में संशोधन-परिवर्धन कर सके।

ये समस्त शक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व प्रत्येक संगम को तुरन्त नहीं सौंपे जाने चाहिए। कुछ थोड़े से कार्यों से शुभारम्भ की जा सकती है तथा फिर उनकी क्षमता और उपलब्धि के आधार पर उनको सौंपे गये उत्तरदायित्वों को घटाया-बढ़ाया जाना चाहिए।

78 स्पष्ट है कि इस कार्यक्रम से दोनों ही विभागों तथा विद्यालयों को लाभ होगा। जिला शिक्षाधिकारी प्रत्येक विद्यालय से सघन रूप से सम्पर्क बनाये रखेगा तथा उसे एक इकाई मानकर व्यवहार करेगा, इससे वह मुख्य मुख्य आवश्यकताओं पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकेगा और इस प्रकार विभाग को उच्च-स्तरीय क्षमता वाले कम निरीक्षण अधिकारियों को नियुक्त करना पड़ेगा। इससे विद्यालय भी अधिक शक्ति सम्पन्न होंगे क्योंकि एक अधिक लचीली प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत उन्हें अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।

79 इस ही समान कार्यक्रमों को विकसित करने के लिए महाविद्यालयों को पड़ोस के उच्च विद्यालयों से जोड़ देना लाभप्रद रहेगा। विश्वविद्यालय तथा विद्यालयों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे उच्च विद्यालयों में स्तर सुधार कार्यक्रम में सहायता करने के दृष्टिकोण से प्रयोगशील संस्थाओं का संचालन करें, उच्च विद्यालय के अध्यापकों को सेवारत प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करें, पाठ्य पुस्तकें एवं शिक्षण-सामग्री का निर्माण करें तथा प्रतिभा की पहिचान एवं उसके विकास में सहायता करें।

80 सम्बद्धता प्रदान करने वाले प्रत्येक विश्वविद्यालय को उक्त आधार पर सम्बद्ध महाविद्यालयों में सुधार करने के विशेष प्रयत्न करने चाहिएँ। (सामान्यतया एक विश्वविद्यालय पर 30 से अधिक महाविद्यालयों को सम्बद्ध करने का भार न पड़े)। सम्बद्धता के सम्बन्ध में निर्धारित शर्तों का समय-समय पर पुनर्विलोकन तथा उनका कड़ाई से पालन करवाया जाना चाहिए। सम्बद्ध महाविद्यालयों का आवधिक सम्पूर्ण निरीक्षण किया जाना चाहिए—कम से कम तीन साल में एक बार—क्योंकि सम्बद्धता को एक ऐसा विशेषाधिकार समझा जाय जिसे प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील तथा योग्य बने रहना आवश्यक है। इसके साथ-साथ ही प्रत्येक विश्वविद्यालय को सम्बद्ध महाविद्यालयों की एक परिषद् स्थापित करनी चाहिए। इस परिषद् का काम होगा विश्वविद्यालय की सम्बद्धता से सम्बन्धित समस्त मामलों पर सम्मति देना, इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय की नीति को लागू करने में सहायता देना, महाविद्यालयों के उचित विकास में सहयोग देने की दृष्टि से उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखना तथा महाविद्यालयों का स्तर निरन्तर उन्नत हो रहा है अथवा नहीं—इसका पता लगाने के लिए उनका कालावधिक मूल्यांकन करना।

शैक्षिक अवसरों के विस्तार तथा समकरण सम्बन्धी समस्याएँ

81 शिक्षा पुनर्रचना का तीसरा पक्ष है सभी स्तरों पर शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार करना, जिसमें शैक्षिक अवसरों के समकरण पर विशेष बल दिया गया है।

82 इस क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्यक्रम है औसत नागरिक के शैक्षिक स्तर में उन्नति करना तथा इस दृष्टिकोण से प्राथमिक शिक्षा के लिए पर्याप्त साधन जुटाना तथा प्रौढ़ निरक्षरता को समाप्त करना।

83 प्राथमिक शिक्षा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में निर्देश है कि 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जाय। यह वचन अपने में सम्पूर्ण नहीं है, इसमें ऐच्छिक शिक्षा का प्रावधान भी प्रच्छन्न रूप में निहित है। निरक्षरों की विशाल संख्या तथा उन पर होने वाले व्यय को ध्यान में रखते हुए इस लक्ष्य की प्राप्ति निमित्त एक व्यावहारिक कार्यक्रम को 20 वर्षों तक चलाना होगा। समस्त बालकों को 1975-76 तक पंचवर्षीय तथा 1985-86 तक अष्टवर्षीय अवधि तक प्राथमिक शिक्षा देना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

84 सर्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति के तीन चरण हैं, जो सामान्यतया परस्पर व्याप्त हैं : विद्यालयों की सर्वव्यापी व्यवस्था, सर्वव्यापी नामांकन तथा सर्वव्यापी अवधारण।

(i) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक विद्यालयों की सर्वव्यापी व्यवस्था कर दी जानी चाहिए। प्रत्येक बालक को घर से 1 मील की दूरी पर निम्न प्राथमिक विद्यालय तथा 1 से 3 मील के बीच की दूरी में एक उच्च प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध होना चाहिए।

(ii) सर्वव्यापी नामांकन हेतु दो मुख्य कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

प्रथम कक्षा में नामांकन समरूप (इस समय नामांकन अत्यधिक विषमरूप है, क्योंकि इसमें पाँच वर्ष से कम की आयु से लेकर 14 वर्ष से ऊपर तक की आयु वाले बालकों का प्रवेश किया जाता रहा है) हो तथा निर्धारित आयु वर्ग (6-7) के बालकों को किसी अन्य कक्षा में नहीं बल्कि पहली में ही नामांकित किये जाने का प्रयत्न हो। दूसरा—अवर प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर छात्रों द्वारा विद्यालय छोड़े जाने की प्रवृत्ति को समाप्त किया जाय (इस समय लगभग 20 प्रतिशत बालक अवर प्राथमिक शिक्षा से आगे नहीं बढ़ पाते) तथा ऐसा प्रयत्न हो कि जो बालक इस स्तर की शिक्षा को समाप्त करें वह अनिवार्य रूप से आगे के स्तर की शिक्षा को भी प्राप्त करें। इस प्रथम कार्य को पूरा करने के लिए 10 वर्षों की अवधि में बँधे हुए सुविचारित रूप से तथा सघन प्रयत्न किये जाएँ। दूसरे कार्यक्रम को पूरा करने में कुछ अधिक समय लगेगा।

(iii) सर्वव्यापी प्रतिधारण से तात्पर्य है कि शिक्षा में वृद्धि रोध तथा क्षय को परिसमाप्त करना तथा इस बात से आश्वस्त होना कि प्रत्येक नामांकित छात्र एक कक्षा से दूसरी कक्षा में नियमित रूप से उन्नति करता हुआ तब तक विद्यालय में अध्ययन करता है जब तक कि वह अनिवार्य पाठ्यक्रम समाप्त नहीं कर लेता अथवा दूसरे शब्दों में यह कहते हैं कि प्राथमिक-स्तर की शिक्षा की प्रचलित तीन वर्ष की औसत अवधि को सात वर्षों या इससे अधिक तक बढ़ाना होगा। यह सर्वाधिक कठिन कार्य है और इसका निदान आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक है। प्रत्येक औसत माता पिता आर्थिक रूप से इतने सम्पन्न हों कि वे अपने बालकों को बड़े होने तक विद्यालय में ही रख रहें, माता पिता को भी इतना शिक्षित किया जाय कि वे अपने बालकों के लिए शिक्षा के महत्व को समझ सकें तथा विद्यालयों के भी उत्तम गुणात्मक सुधारों सम्बन्धी विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से बालकों को अपने प्रति आकर्षित करने तथा रोक रखने की क्षमता को बढ़ाना होगा। इस कार्य में लगभग दो दशक लग सकते हैं।

8. क्षय तथा वृद्धि रोध की समस्या प्राथमिक-स्तर पर बड़ी भयानक है। पहली कक्षा में नामांकित 100 छात्रों में से केवल 40 छात्र कक्षा 4 तक पहुँचते हैं और कक्षा 7 में लगभग [illegible] हो। प्राथमिक स्तर पर कुल क्षय का लगभग आधा भाग तो पहली कक्षा में ही घटित हो जाता है। अतएव इस समस्या पर विशेष ध्यान देना होगा तथा इसके निदान के लिए विशिष्ट प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इसका निदान निम्नलिखित उपायों द्वारा सम्भव है

पहली कक्षा (i) जो आगामी वर्ष में प्रथम कक्षा में प्रवेश लेना चाहते हैं उन समस्त छात्रों के नामों का पूर्व पंजीकरण करने की व्यवस्था को प्रारम्भ किया जाना चाहिए। इस पूर्व पंजीकरण वर्ष में इन बालकों को गल-केन्द्रों के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षण दिये जाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। इससे विद्यालय में आकर पढ़ने की उनमें आदत पड़ जायगी तथा इस प्रकार उन्हें औपचारिक शिक्षण के लिए तैयार किया जा सकेगा।

(ii) यथासम्भव सामान्तर उन्हें विद्यालय पूर्व शिक्षा दी जानी चाहिए। हर स्थिति में पहली कक्षा में खेल पद्धति अपनायी जानी चाहिए।

(iii) पहली और दूसरी कक्षा में कोई श्रेणी विभाजन पद्धति नहीं होना चाहिए और सम्भव हो तो पहली चौथी कक्षा में भी श्रेणी विभाजन नहीं किया जाना चाहिए।

कक्षा 2 से 7—इस स्तर पर क्षय का मुख्य कारण आर्थिक है—बालक (विशेषत बालिका) ज्यों ही आर्थिक दृष्टि से लाभकारी बन जाता है और घर में अथवा बाहर कुछ काम करना या कमाना आरम्भ कर देता है तो उसे विद्यालय भेजना बन्द कर दिया जाता है। अतएव अंशकालिक (पार्ट टाईम) व्यवस्था को बड़े पैमाने पर अपनाया जाना चाहिए ताकि बालक पढ़ सकें और अर्थोपार्जन भी कर सकें।

प्रत्येक प्रखण्ड स्तर से प्राथमिक शालाओं में वृद्धि रोध तथा क्षय की स्थिति का मूल्यांकन तथा उसके कारणों पर विचार विमर्श करने के लिए नियमित वार्षिक व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे विद्यालय का कर्मचारी वर्ग इस समस्या के प्रति सजग हो जायगा तथा इसके शीघ्र निदान हेतु अपनाए गए कार्यक्रमों के विकास में सहायक सिद्ध होगा। नामांकन अथवा व्यय सम्बन्धी आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर इन बुराइयों को कम करने के बारे में प्राथमिकता देने के दृष्टिकोण से, पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत क्षय तथा वृद्धि रोध को समाप्त करने के लिए विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किये जाने चाहिए तथा इस क्षेत्र में प्रायोगिक प्रयत्नों का तरह स्पष्ट एवं निश्चित दिशा निर्देश भी किया जाना चाहिए।

५६ प्रौढ़ निरक्षरता का परिसमापन

प्रौढ़ निरक्षरता का परिसमापन करने के लिए एक 20 वर्षीय क्रमिक कार्यक्रम अपनाना होगा। आगामी दस वर्षों तक अनिवार्य शिक्षा का सम्बन्ध में और अधिक मात्रा वृद्धि न होने देने के लिए 11 14 आयु वर्ग के उन बालकों

के लिए अंशकालिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय, जिन्होंने अवर प्राथमिक स्तर की शिक्षा को पूरा नहीं किया है तथा जो अब विद्यालय में नहीं पढ़ रहे हैं। इसके साथ ही साक्षरता अभियानों को चयनित तथा सामान्य आधार पर गठित करना होगा। चयनित पद्धति के अन्तर्गत प्रौढ़ों के उन विशिष्ट समूहों के लिए कार्यक्रम निर्धारित किये जाने चाहिए जिन्हें आसानी से पहिचाना नियमित और साक्षर बनने के लिए अभिप्रेरित किया जा सकता है। बड़े कृषि फार्मों तथा व्यापारिक औद्योगिक, सविनिर्माण तथा ऐसी ही अन्य बड़ी संस्थाओं के मालिकों के लिए यह अनिवार्य (आवश्यक हो तो कानून द्वारा) किया जाना चाहिए कि वे अपने यहाँ काम करने वाले सभी निरक्षर व्यक्तियों को उनकी नियुक्ति तिथि से तीन वर्ष की अवधि के भीतर साक्षर बनाने योग्य साक्षर बना देंगे। सरकारी क्षेत्र के बड़े औद्योगिक संस्थानों को इस दिशा में तुरन्त पहल करनी चाहिए और इस प्रकार नेतृत्व प्रदान करना चाहिए। अपने कर्मचारियों की और विशेषतः निरक्षरों की, शिक्षा की योजना तैयार करना प्रत्येक विकास-योजना का अभिन्न अंग होना चाहिए। आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए आरम्भ की गयी सभी सरकारी योजनाओं में साक्षरता कार्यक्रम को आवश्यक तत्व माना जाना चाहिए। सामान्य कार्यक्रम के अन्तर्गत निरक्षरता से लड़ने के लिए देश के सभी उपलब्ध शिक्षित पुरुषों तथा महिलाओं की एक सेना तैयार की जानी चाहिए तथा उनका सुनियोजित साक्षरता अभियानों में सहयोग लिया जाना चाहिए। इसमें सभी शिक्षकों, छात्रों तथा शैक्षिक संस्थाओं का सक्रिय योग हो। उच्च प्राथमिक, माध्यमिक उच्चतर माध्यमिक, व्यावसायिक विद्यालयों के छात्र तथा विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की अवर स्नातक कक्षाओं के छात्रों से अनिवार्य राष्ट्रीय-सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का कार्य लिया जाना चाहिए। सभी प्रकार के विद्यालयों के अध्यापकों के लिए अनिवार्य होना चाहिए कि वे इस आन्दोलन में भाग लें और निरक्षरों को साक्षर बनायें। प्रत्येक शैक्षिक संस्था को सामाजिक जीवन का केन्द्र स्वरूप बना दिया जाना चाहिए तथा उसे यह उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए कि वह उस केन्द्र के गिर्द सामाजिक जीवन से निरक्षरता को परिसमाप्त कर दे और उस पर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व भी सौंपा जाना चाहिए कि वह एक निश्चित क्षेत्र से निरक्षरता को परिसमाप्त करे।

९७ शिक्षा तथा जन-बल सम्बन्धी आवश्यकताएँ

माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में नामांकन नीति चार

मापदण्डों के संयुक्त रूप पर आधारित होनी चाहिए। जनता द्वारा ऐसी शिक्षा की मांग, नैसर्गिक योग्यता के भण्डार का सर्वांगीण विकास, वांछित गुणात्मक स्तरों से सम्बंधित भौतिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने की समाज की क्षमता, तथा जन-बल-सम्बन्धी आवश्यकताएं। वास्तविक मात्रा पर आधारित भौतिक सुविधाओं का विस्तार करने की समाज की क्षमता से यदि शिक्षा के न्यूनतम लक्ष्य निर्धारित होते हैं तो जनता की माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा सम्बन्धी मांग अथवा उपलब्ध नैसर्गिक योग्यता के भण्डार को विकसित करने की आवश्यकता से शिक्षा के अधिकतम लक्ष्य निर्धारित होते हैं। इन उच्च तथा निम्न लक्ष्यों के बीच की दूरी को उस विचार विमर्श के द्वारा समाप्त किया जा सकता है जो शैक्षिक व्यवस्था के परिणामों को जन बल की आवश्यकताओं से सम्बद्ध करने की आवश्यकता से उत्पन्न होता है। इससे स्पष्ट हो जायेगा कि किन प्राथमिकताओं को अपनाना है, किन विभिन्न पाठ्यक्रमों का विकास करना है तथा विभिन्न पाठ्यक्रमों में किस सीमा तक सुविधाओं को उपलब्ध कराना है।

८८ माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के निमित्त भौतिक सुविधाओं की व्यवस्था तथा जन बल की अनुमानित आवश्यकताओं के आपसी सम्बन्ध स्थापित करने हेतु इस (उक्त) सिफारिश को कुछ सामान्य प्रयासों के साथ ही समझा जाना चाहिए। जन बल के सम्बन्ध में की गयी भविष्यवाणी कम ही विशुद्ध ठीक होती है क्योंकि यह विभिन्न सम्भावनाओं पर आधारित होती है। अतएव यह आवश्यक है कि आवश्यक आंकड़ों को इकट्ठा करने की पद्धति तथा भविष्यवाणी करने की तकनीक में भी निरन्तर सुधार किया जाता रहे। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि जन बल सम्बन्धी भविष्यवाणी सामान्यतया संख्यात्मक अथवा मात्रात्मक सम्भावना में व्यक्त की जाती है। अतएव भौतिक सुविधाओं में विस्तार का प्रश्न सम्बन्धी सुविधाएं उपलब्ध कराने तक ही सीमित हो जाता है। अतएव यह आवश्यक है कि यदि जन बल के गुणात्मक पक्ष पर बल दिया जाए क्योंकि उपयुक्त गुणात्मक स्तर को न बनाये रखने से आर्थिक उन्नति होने के बजाय उसमें रुकावट पहुँचती है। और भी जन बल की आवश्यकताएं ही सुविधाओं की व्यवस्था को निर्धारित करने का एक मात्र कारण नहीं हो सकती। शिक्षा को उच्चतम शिखर तक ले जाने में पूर्व जन बल की आवश्यकताओं के परखने का एक मात्र मापदण्ड के आधार पर नियंत्रण निश्चित ही बाधक सिद्ध होगा।

८९ ... के परिणामों का जन बल-सम्बन्धी आवश्यकताओं से सम्बन्धित करने के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाना होगा

(i) राष्ट्रीय-स्तर—राज्यों से विचार विमर्श करके केन्द्र द्वारा राष्ट्रीय स्तर की एक योजना जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय विकास से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र सम्मिलित हों, बनायी जानी चाहिए जैसे—जहाँ प्रशिक्षित कर्मचारियों की गतिशीलता अधिक है या होनी चाहिए अथवा जहाँ कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने हेतु संस्थाओं को आरम्भ करने का काम बहुत खर्चीला हो अथवा जहाँ ऐसी संस्थाओं में वांछित उच्च स्तरीय कर्मचारी वर्ग का पर्याप्त पूर्ति न हो। इसके अन्तर्गत इंजीनियरिंग कृषि तथा चिकित्सा शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के लिए अध्यापकों की तैयारी को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(ii) राज्य स्तर—शेष क्षेत्रों से सम्बन्धित योजना राज्य स्तर पर राज्य सरकारों द्वारा बनायी जानी चाहिए।

(iii) जन बल की आवश्यकताओं को मद्देनजर रखते हुए सभी क्षेत्रों में विद्यालय तथा महाविद्यालय की व्यावसायिक शिक्षा का प्राथमिकता के आधार पर विस्तार करना होगा।

(iv) सामान्य शिक्षा, जो कि कुछ क्षेत्रों में कम विकसित है और दूसरे क्षेत्रों में अधिक विकसित, के अन्तर्गत नामांकन के सम्बन्ध में समकरण की नीति अपनानी होगी।

९० चयनात्मक प्रवेश

माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय शिक्षा में विस्तार की वर्तमान गति जो विश्वास किया जा सकता है, कि भविष्य में और अधिक तेज होगी, जन-बल की आवश्यकताओं सम्बन्धी सभी अनुमानों से बहुत अधिक आगे होगी, फलतः जो आगे चल कर उनको अपव्यय होने के अलावा शिक्षित-बेकारी की समस्या भयंकर रूप से बढ़ जायगी। अतएव आवश्यक है कि उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय शिक्षा में चयनात्मक आधार पर प्रवेश किये जाएँ। शिक्षा ... पर ज्यों ज्यों कोई बढ़ता चला जायगा चयनात्मक पद्धति का विशेष महत्त्व प्राप्त होता जायगा अर्थात् निम्न माध्यमिक से उच्चतर माध्यमिक, उच्चतर स्नातक, अधिस्नातक और अनुसन्धान स्तर।

९१ किन्तु फिर भी निम्न माध्यमिक स्तर पर, जिस सामान्य शिक्षा का समाप्ति स्तर समझा जाना चाहिए 'चयन' का अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि

योग्य' छात्रों को प्रवेश देता है और 'अयोग्य' छात्रों को बाहर निकाल देता है। इस स्तर पर चयन 'परीक्षण और निर्देशन' की ओर अधिक और 'निरसन' की ओर कम उन्मुख हो। इसका मुख्य प्रयोजन यह होना चाहिए कि कोई छात्र अपनी रुचियों तथा क्षमताओं के स्तर से अवगत हो जाय तथा वह यह निर्णय ले सके कि उसके लिए विद्यालय छोड़कर बाहरी दुनिया में कार्य करना बेहतर होगा अथवा किसी विशेष व्यावसायिक पाठ्यक्रम में भाग लेना या सामान्य शिक्षा ही प्राप्त करते रहना। दूसरे शब्दों में इस स्तर पर चयन का अर्थ होगा परीक्षण और निर्देशन सेवाओं की सहायता के माध्यम से 'आत्म चयन'। माध्यमिक शिक्षा के विस्तार का चाहे कोई भी स्तर हो, लेकिन छात्रों को यह सुविधा सभी क्षेत्रों के सभी विद्यालयों में उपलब्ध होनी चाहिए। किसी विशिष्ट क्षेत्र में चयन पद्धति की कठोरता में अपनाये जाने की आवश्यकता है या नहीं इसका निर्णय स्थानीय आधार पर उस क्षेत्र की जन-बल सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा (शिक्षा) विस्तार के प्राप्त स्तर को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

92 उचित चयन की प्रक्रिया उच्चतर माध्यमिक स्तर से आरम्भ होगी। उच्चतर माध्यमिक (अथवा इसके समकक्ष) स्तर के विद्यालयों के रिक्त स्थानों को उपलब्ध सुविधाओं की रोशनी में निश्चित किया जाना चाहिए और तब विद्यालय योग्य आवेदकों में से श्रेष्ठ प्रत्याशियों का चयन करें। यह कार्यक्रम उस सीमा तक सफल होगा जिस सीमा तक उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण किया जा सकता है तथा छात्रों को उस ओर प्रवृत्त किया गया है। अवर माध्यमिक स्तर की शिक्षा समाप्त व्यक्तियों को नौकरी के जितने अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं उनका उपयोग करते हुए जो पढ़ना चाहते हैं उन्हें अंशकालिक शिक्षा तथा स्वाध्याय शिक्षा की सुविधाओं की अच्छी व्यवस्था की जाती है तथा साथ लोगों में यह भावना भरना कि शिक्षा कार्य प्राप्ति का साधन है न कि स्वयं कार्य?

93 अवर स्नातक स्तर पर चयन-पद्धति को कहीं अधिक कठोरता से अपनाना होगा। इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित कार्यक्रम को कार्यान्वित करना होगा

(1) इस तथ्य से परिचय होने के लिए कि उचित स्तर बनाए रखे जा रहे हैं, यह आवश्यक है कि महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय के विभाग के अन्तर्गत उपलब्ध रिक्त-स्थानों की संख्या को उपलब्ध अध्यापकों की संख्या तथा प्राप्त सुविधाओं के सन्दर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए।

विज्ञान तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अभी तक यही पद्धति मानी

तौर पर अपनायी जाती है। कला तथा वाणिज्य के पाठ्यक्रमों में भी इस पद्धति को अपनाये जाने की आवश्यकता है। महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय के किसी विभाग में छात्रों की अधिकतम संख्या का निर्धारण हर स्थिति में स्वयं विश्वविद्यालय को ही करना चाहिए।

(ii) परीक्षा प्रणाली में सुधार-सम्बन्धी कार्यक्रम के एक अंश-स्वरूप यह प्रस्तावित किया गया है कि विद्यालय शिक्षा के राज्य बोर्ड द्वारा वितरित विद्यालय त्याग प्रमाण-पत्र में प्रत्याशी के सफल अथवा असफल होने का कोई विवरण न हो, अपितु छात्र ने विभिन्न विषयों में जो उपलब्धि प्राप्त की है उसका स्पष्ट उल्लेख हो। अतएव यह आवश्यक है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश योग्यता के सम्बन्ध में शर्तें निर्धारित करें। अयोग्य छात्रों को अपना परीक्षा-फल सुधारने हेतु पुनः परीक्षा देने का अवसर दिया जाना चाहिए।

(iii) उपलब्ध सुविधाओं की तुलना में जहाँ आवेदकों की संख्या कम है, वहाँ सामान्यतया चयन-पद्धति नहीं अपनायी जायगी। परन्तु यदि उपलब्ध स्थानों में आवेदकों की संख्या अधिक है तो संस्था अथवा सम्बन्धित विभाग को चाहिए कि योग्य प्रवेशार्थियों में से वह सर्वोत्तम छात्रों का चयन करें।

(iv) जब तक कि कोई अच्छी चयन पद्धति नहीं विकसित हो जाती तब तक परीक्षा में प्राप्त अंकों को प्रवेश का मुख्य आधार स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु परीक्षा में प्राप्त अंकों की स्वच्छन्दचारिता तथा उनकी अविश्वसनीयता से छात्र को होने वाली क्षति को इससे सम्बन्धित अन्य तथ्यों तथा छात्रों की आर्थिक सामाजिक रूप से पिछड़ी अवस्था पर उचित दृष्टिपात करते हुए, इस तरह पूरा किया जाना चाहिए कि प्रवेशार्थियों की नैसर्गिक प्रतिभा को सही रूप से पहचाना जा सके। अन्तिम रूप से चयन करते समय छात्र के उन विद्यालय अभिलेखों तथा उसकी उन क्षेत्रों में प्रवीणता आदि तथ्यों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनकी परीक्षा में जाँच नहीं हुई है। फलस्वरूप विश्वविद्यालयों को यह अधिकार और उनमें यह साहस भी होना चाहिए कि वे निर्धारित नियमों का निरसन करके उन छात्रों का प्रवेश ले सकें जिनकी प्रतिभा की पहचान तो करली गयी है किन्तु जो प्रवेश-शर्तों को पूरा नहीं करते हैं। छात्रवृत्ति प्रदान करने के निमित्त विद्यालय गुच्छ (School Clusters) के आधार पर छात्रों को चयनित करने की प्रस्तावित शिक्षा विधि को गुणवत्ती संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देने के प्रकार

पर प्रयुक्त किया जा सकता है।

(१०) प्रत्येक विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय प्रवेश बोर्ड की स्थापना करनी चाहिए, जो प्रवेश से सम्बन्धित सभी मामलों पर उसे सम्मति दे।

(११) उच्च शिक्षा के अन्तर्गत विभिन्न पाठ्यक्रमों में (प्रवेश सम्बन्धी) उचित चयन पद्धति में उचित विकास करने के दृष्टिकोण से एक केन्द्रीय परीक्षण संगठन स्थापित किया जाना चाहिए।

94 स्नातकोत्तर स्तर पर चयन सर्वाधिक कठोरतापूर्वक करने होंगे, क्योंकि इस स्तर पर शिक्षा के स्तर को बनाये रखना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह वह क्षेत्र है जहाँ बीजारोपण होता है तथा जो सम्पूर्ण शिक्षा क्षेत्र को नष्ट भी कर सकता है उसका सुधार भी कर सकता है। उदाहरणार्थ इस स्तर पर स्तरावनति होने से उच्च शिक्षा के लिए अच्छे शिक्षक प्राप्त करना दुर्लभ हो जायगा। इससे विश्वविद्यालय-स्तर पर स्तरावनति होगी तथा परिणामस्वरूप माध्यमिक विद्यालयों के लिए अच्छे शिक्षक प्राप्त होना कठिन हो जायगा। परिणामतः माध्यमिक शिक्षा में स्तरावनति होगी और प्राथमिक विद्यालयों के लिए अच्छे शिक्षक मिलना कठिन हो जायगा। इस दुश्चक्र को समाप्त करने का एक ही उपाय है कि स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसन्धान के गुणात्मक स्तर में सुधार किया जाय। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक है ताकि कृषि विभाग उद्योग जन प्रशासन तथा जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए योग्य कर्मचारी प्राप्त हो सकें।

95 अंशकालिक शिक्षा तथा स्वाध्याय

अब मात्र पूर्णकालिक शिक्षा पर ही निर्भर रहने की वर्तमान नीति को निरस्त करने की आवश्यकता है। शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में तथा प्रत्येक स्तर पर अंशकालिक तथा स्वकालिक (Own time) शिक्षा को विशाल पैमाने पर अपनाया जाना चाहिए तथा पूर्णकालिक शिक्षा के समान ही इन दोनों को महत्त्व दिया जाना चाहिए। दूसरे, इस समय प्रौढ़ तथा अनवरत शिक्षा प्रायः पूर्णतया उपेक्षित है। इसका हर सम्भव स्तर तक विस्तार किया जाना चाहिए। इन दोनों में एक साथ सुधार करने का परिणाम यह होगा कि

—जिन्होंने शिक्षा के किसी स्तर को पूरा नहीं किया है वे उसे पूरा कर सकेंगे तथा यदि वे चाहें तो अगले स्तर की शिक्षा में प्रवेश प्राप्त कर सकेंगे

—प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति किसी भी स्तर अथवा में अपना सामान्य

कराकर अथवा बिना नामांकन कराये आगे की शिक्षा प्राप्त कर सकेगा,

—कोई भी कार्यकर्ता योग्यता, क्षमता, ज्ञान तथा व्यावसायिक कुशलता प्राप्त कर सकेगा और इस प्रकार एक कुशल कार्यकर्ता बनकर वह अधिक काम सम्बन्धी अधिक अवसरों को प्राप्त कर सकेगा और

—शिक्षित व्यक्ति अपने ज्ञान को सजीव बनाये रख सकेगा। परिणाम स्वरूप अपनी रुचि के क्षेत्र में नवीनतम ज्ञान के साथ वह कदम मिलाकर चल सकेगा।

इस प्रकार के कार्यक्रमों को जब अधिक रूप से उन्नत तथा सम्पन्न देशों में भी विकसित किया जा रहा है तो भारत जैसे अर्द्ध विकसित तथा गरीब देश में तो बिल्कुल ही उपेक्षित नहीं किया जा सकता। इन कार्यक्रमों का कार्यान्वित करने का परिणाम यह होगा कि विद्यालय के बाद जीवन में प्रवेश करना सरल हो जायगा, राज्य पर होने वाले शिक्षा के व्यय में न्यूनता आ जायेगी तथा शिक्षा व्यवस्था से प्रभावित होकर बहुत बड़ी संख्या में वे लोग शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे जो आर्थिक संकट के कारण शिक्षित नहीं हो पा रहे हैं, लेकिन जो स्वयं को शिक्षित करना चाहते हैं।

96 पत्राचार पाठ्यक्रमों के विकास पर अधिक बल दिया जाना चाहिए, न केवल विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए, अपितु माध्यमिक विद्यालय के छात्रों अध्यापकों, कृषि व उद्योगों में काम करने वाले तथा अन्य कार्यकर्ताओं एवं उन नागरिकों के लिए भी जो सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यों से सम्बन्धित विषयों के अध्ययन के माध्यम से अपना जीवन सम्पन्न बनाना चाहते हैं। जो छात्र पत्राचार पाठ्यक्रम को ग्रहण करें, उन्हें अध्यापकों से यदा-कदा मिलने के अवसर दिए जाने चाहिए उन्हें अन्य छात्रों की तरह ही समझा जाना चाहिए और जहाँ सम्भव हो उन्हें कुछ महाविद्यालयों से सम्बद्ध कर लिया जाना चाहिए, ताकि वे पुस्तकालयों एवं अन्य सुविधाओं का लाभ उठा सकें।

97 विभिन्न स्तरों पर नामांकन

आगामी 20 वर्षों में नामांकन की समस्या एक स्तर अथवा क्षेत्र से दूसरे स्तर तथा क्षेत्र में ही नहीं, अपितु एक ही स्तर अथवा क्षेत्र में स्थान स्थान पर भी भिन्न रहेगी। सन् 1950 से 1965 तक के (वास्तविक) तथा 1966 से 1985 तक के (अनुमानित) नामांकन के आँकड़े परिशिष्ट—5 में दिए गये हैं।

(i) निम्न प्राथमिक स्तर पर प्रवेशार्थियों की संख्या सन् 1950 में 1 करोड़ 10 लाख से बढ़कर, 1965 में 3 करोड़ 70 लाख हो गयी। इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय योजना की औसत वार्षिक वृद्धि 1.9 प्रतिशत से बढ़कर तृतीय योजना में 6.2 प्रतिशत हो गयी। इस क्षेत्र में अब हम संतृप्ति बिंदु तक पहुँचने वाले हैं। शीघ्र ही सभी बालक विद्यालयों में भर्ती कर लिये जायेंगे तथा भर्ती में होने वाली आगामी वृद्धि जनसंख्या में होने वाली वृद्धि तथा शिक्षा में होने वाले क्षय की कमी पर निर्भर करेगी। अतएव भविष्य में प्रवेश-संख्या में होने वाली भावी वृद्धि की दर अतीत की तुलना में कहीं अधिक कम होगी। तथ्य तो यह है कि जब जन्म-दर घटने लगेगी और शिक्षा में क्षय कम होने लगेगा तो प्रवेश संख्या वस्तुतः घटना आरम्भ हो जायगा। सन् 1985 तक इस स्तर पर प्रवेशार्थियों की संख्या लगभग 7 करोड़ 60 लाख हो जायगी अर्थात् 20 वर्षों में दुगुनी हो जायगी। यह कार्य मद्रास अथवा केरल जैसे राज्यों में तो सरलतापूर्वक निभ जायगा क्योंकि वहाँ पहिले ही बहुत कुछ किया जा चुका है। मध्य प्रदेश अथवा राजस्थान जैसे राज्यों में यह कार्य बहुत ही कठिन है। अब मुख्य समस्या तो सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़ी हुई जातियों मुख्यतः जनजातियों में से बालिकाओं व बालकों को भर्ती करने की है।

(ii) उच्च प्राथमिक स्तर पर गत 15 वर्षों में प्रवेशार्थियों की संख्या लगभग चौगुनी हो गयी है—1950 में लगभग 30 लाख से बढ़कर यह संख्या 1965 में लगभग 1 करोड़ 20 लाख हो गयी है। आगामी 2 दशकों में विस्तार का परिणाम इसी के समान होगा अर्थात् प्रवेश-संख्या में चौगुनी वृद्धि करनी होगी, अर्थात् 1965 में एक करोड़ 20 लाख से बढ़कर यह संख्या 1985 में 1 करोड़ 60 लाख हो जायगी। किन्हीं अथवा केरल जैसे कुछ निश्चित क्षेत्रों को छोड़कर शेष में यह कार्य बहुत ही कष्टसाध्य होगा। संविधान के अनुच्छेद 15 के अन्तर्गत निर्दिष्ट लक्ष्यों का अनुपालन करने के दृष्टिकोण से वस्तुतः यही एक मात्र नाजुक क्षेत्र है। जैसा कि पहले ही व्यक्त किया जा चुका है कि अनिश्चित परिवारों के बालकों को शिक्षित करने के लिए अंशकालिक शिक्षा को विशाल पैमाने पर अपनाना होगा। 1985 तक इन प्रवेशार्थियों की संख्या कुल संख्या का 20 प्रतिशत हो जाने की सम्भावना है।

(iii) निम्न माध्यमिक स्तर पर वैसी ही स्थिति है, जैसी उच्च प्राथमिक स्तर पर है। इन 15 वर्षों में प्रवेशार्थियों की संख्या चौगुनी हो

गयी है—1950 म 1 करोड 50 लाख से बढकर 1965 म यह सख्या 6 करोड 10 लाख हो गयी है और सम्भावना है कि इस सख्या म 1985 तक 2 करोड 40 लाख की और बढोत्तरी हो जायेगी। इस समय विकास असमान है। स्थानीय आवश्यकताओ के अनुरूप शिक्षा म समकरण स्थापित करने के लिए कुछ प्रयत्न करने होगे।

इस स्तर पर दो मुख्य कार्यक्रमो पर विशेष बल देना होगा—प्रथम है, एक विशाल पैमाने पर अशकालिक शिक्षा की व्यवस्था। इस समय शायद ही कही अशकालिक शिक्षा की व्यवस्था हो। लेकिन 1985 तक कुल प्रवेशार्थियो की सख्या के लगभग 20% छात्रो की अशकालिक शिक्षा की व्यवस्था की जाना चाहिए। दूसरा कार्यक्रम यह है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रमो म प्रवेश-सख्या म वृद्धि की जाय। इस समय इस क्षेत्र म प्रवेश-सख्या बहुत कम है। वास्तविकता तो यह है कि 1950 म कुल प्रवेशार्थियो की 3 1% से घटकर यह सख्या 1965 म 2 7 प्रतिशत रह गयी है। अतएव 1965 म प्रवेशार्थियो की यह सख्या 1 लाख से बढाकर 1985 तक लगभग 4 करोड 80 लाख करनी होगी अर्थात् कुल प्रवेशार्थियो का 20%।

(ii) गत 15 वर्षों म उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रवेशार्थियो की सख्या म 5 गुनी वृद्धि हुई है। यह सख्या सन् 1950 म 2,82 000 थी और 1965 म 10 लाख 40 हजार। विकास की यही गति आगामी दो दशको तक तीव्र रहेगा और 1985 तक प्रवेशार्थियो की सख्या बढकर 70 लाख तक हो जायगी। यह मुख्यत इस प्रस्ताव के कारण है कि देश के तमाम भागो म इस स्तर की शिक्षा की अवधि समान रूप से 2 वर्ष और बढा दी जाय। इस समय यह अवधि केवल और उत्तर प्रदेश म ही दो वर्ष है। यदि प्रवेश के समय चयनित पद्धति नही अपनायी जाती तो प्रवेशार्थियो की सख्या इससे आधी और बढ जायगी। व्यावसायिक पाठ्यक्रमो म प्रवेश की सख्या इस समय 40% है इसम 50% तक की वृद्धि की जानी चाहिए तथा अशकालिक शिक्षा की सुविधाओं की (जो इस समय प्राय नगण्य है) अधिक उपलब्ध कराया जाना चाहिए, ताकि कुल प्रवेशार्थियो की सख्या का लगभग 25% अशकालिक शिक्षा को ग्रहण कर सके।

(i) स्नातकोत्तर स्तर पर 1950 म प्रवेशार्थियो की सख्या 2 लाख 15 हजार थी, जो 1965 म बढकर 10 लाख हो गया है तथा आशा की जाती है कि 1985 तक यह सख्या 30 लाख हो जायगी। यदि प्रवेश म चयनित पद्धति को नही अपनाया जाता तो 1985 तक इस सख्या म दुगुनी

वृद्धि भी हो सकती है। कुल प्रवेशार्थियों के लगभग 30% छात्रों के निमित्त अंशकालिक शिक्षा सुविधाओं को जुटाया जाय। व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश संख्या को कुल प्रवेशार्थियों की संख्या की लगभग एक तिहाई संख्या तक बढ़ाना होगा।

(५) स्नातकोत्तर-स्तर पर सुविधाओं में बहुत अधिक विस्तार की आवश्यकता है। 1950 में यह संख्या 19 हजार थी और 1965 में 1 लाख 8 हजार। 1985 तक यह संख्या और अधिक बढ़कर 9 लाख 60 हजार हो जायगी। यह इसलिए क्योंकि आशा की जाती है कि अवर माध्यमिक स्तर के अध्यापकों में से कुछ निश्चित अध्यापक तथा अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के समस्त अध्यापक स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेंगे। उच्चतर माध्यमिक स्तर तथा विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में विशाल पैमाने पर होने वाले विस्तार जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है के परिणामस्वरूप स्नातकोत्तर तथा अनुसंधान सम्बन्धी योग्यताएँ रखने वाले अध्यापकों की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता होगी। साथ कृषि उद्योग तथा नौकरियों में विकास के निमित्त भी ऐसे व्यक्तियों की बहुत अधिक संख्या में आवश्यकता होगी।

शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत 1950 में 2 करोड़ 10 लाख व्यक्ति प्रवेश पा चुके थे अर्थात् कुल जनसंख्या का 7 प्रतिशत में कुछ थोड़ा कम, 1965 में यह संख्या बढ़कर 7 करोड़ हो गया है अर्थात् कुल जनसंख्या का 14 प्रतिशत। आशा की जाती है कि 1985 तक इस संख्या में और वृद्धि होगी तथा यह 17 करोड़ हो जायेगी अर्थात् कुल जनसंख्या का 23 प्रतिशत।

98 शिक्षा तथा सेवायुक्ति

प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षा तथा सेवायुक्ति (एम्प्लायमेंट) में कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है और न ही उसमें शिक्षा-व्यवस्था के परिणामों का जन बल की आवश्यकताओं अथवा सेवा अवसरों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करके कोई स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। ऊपर जो अनुमान लगाये गये हैं उनसे शिक्षा और सेवायुक्ति में कम से कम शिथिल प्रकार सम्बन्ध तो स्थापित करने में सहयोग अवश्य ही मिलेगा। यह भी आवश्यक है कि इनमें आगे से साथ सम्बन्ध स्थापित करें तथा ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने की शिक्षा में प्रयत्न किये जाएँ। अब साधारण क्रम यह है कि जिसके अनुसार ज्यों ही कोई स्नातक उपाधि प्राप्त कर लेता है उसे स्नातक उपाधि-पत्र के साथ-साथ सेवा नियुक्ति का आदेश भी दे दिया जाता है। इससे छात्रों की अभिरुचि में सुधार होगा उनकी शिक्षा सोद्देश्य हो

जायगा तथा वे अनुभव करने लगेंगे कि देश को उनकी आवश्यकता है और वह उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

99 इस समस्या का सतोषप्रद निदान एकांत में बैठकर नहीं किया जा सकता। इस सुलझान के लिए तीन दिशाओं में अभियान आरम्भ करने की आवश्यकता है जनसंख्या पर नियंत्रण, शिक्षा तथा आर्थिक विकास। जन्म की ऊँची दर के कारण इस समय श्रमिक प्रसमूह (Cohort) की संख्या बहुत अधिक बनी है (अर्थात् जो बालक बालिकाएँ 16 या इससे अधिक आयु प्राप्त कर लेते हैं व इस वय में श्रमिक बन जाते हैं)। कुल जनसंख्या की 2 प्रतिशत संख्या श्रमिक बन जाती है। ऐसी स्थिति में अधिक उपलब्धियाँ भी नगण्य ही हैं अर्थात् 60 प्रतिशत श्रमिक अशिक्षित रह जायेंगे तथा केवल लगभग 40 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा को समाप्त कर पायेंगे। इस 40 प्रतिशत में से केवल लगभग 25 प्रतिशत 5 वर्ष से अधिक अवधि तक विद्यालय में पढ पायेंगे, लगभग 8 प्रतिशत माध्यमिक विद्यालय की शिक्षा समाप्त कर चुके होंगे तथा केवल लगभग 1 प्रतिशत विश्वविद्यालय शिक्षा प्राप्त कर चुके होंगे। इसके साथ ही आर्थिक विकास की गति विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में इतनी धीमी होती है कि इस प्रसमूह के आधे श्रमिकों के लिए भी पर्याप्त नौकरियाँ नहीं होती। यदि इस स्थिति में सुधार करना है, तो यह परमावश्यक है कि निम्नलिखित प्रयोजनों को लेकर विकास की एक एकीकृत योजना का निर्माण किया जाय

—10 अथवा 15 वर्षीय सुनियोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत जन्म-दर आधी करना,

—आर्थिक विकास की तीव्रता से इस तरह पूरा करना कि प्रत्येक ऐसे युवक अथवा ऐसी युवती के लिए नौकरी की व्यवस्था हो जो श्रमिक बनना चाहते हैं और

—युवक बालकों तथा बालिकाओं को ऐसी शिक्षा प्रदान करना कि निर्दिष्ट कार्य को करते हुए वे राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम में प्रभाव शाली ढंग से भाग ले सकें।

ऐसी योजनाओं की राष्ट्रीय, राज्य तथा जिला स्तरों पर आवश्यकता है। इन योजनाओं का निर्माण तथा इनको कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व केन्द्रीय राज्य और स्थानीय सरकार का है। शिक्षा तथा सेवायुक्ति की समस्या का ऐसा विकास योजनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही सफल सुलझाया जा सकता है।

100 शैक्षिक अवसरों का समकरण

शिक्षा के महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह भी है कि

शैक्षिक अवसरों का इस तरह समकरण किया जाय कि पिछड़े हुए अथवा सुविधाओं से वंचित जातियों के व्यक्ति शिक्षा के सहयोग से अपनी अवस्था को सुधार सकें। शैक्षिक अवसरों का सम्पूर्ण समकरण सम्भवतया असाध्य है। अतः समस्या की जड़ यह है कि उन तथ्यों को खोज निकालने के सतत् प्रयत्न किए जाएँ जो असमानता के विभिन्न रूपों को जन्म देने की ओर प्रवृत्त हैं और ऐसे उपायों को अपनाने के प्रयत्न भी किए जाएँ कि यदि इन बाधक तत्त्वों को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सके तो कम से कम उन्हें न्यूनतम तो कर दिया जाय। इस दृष्टिकोण में निःशुल्क शिक्षा, छात्रवृत्ति, अपंग बालकों की शिक्षा, देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकास में असंतुलन में कमी तथा लड़कियों की शिक्षा, अनुसूचित जातियों तथा परिगणित जातियों से सम्बन्धित कार्यक्रमों का विकसित करना होगा।

101 निःशुल्क शिक्षा

हमें इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए कि सम्पूर्ण शिक्षा शिक्षण शुल्क से मुक्त हो जाय। चतुर्थ योजना के अन्त तक प्राथमिक शिक्षा तथा पाँचवीं योजना के अन्त तक अवर माध्यमिक शिक्षा को शिक्षण शुल्क से मुक्त कर दिया जाना चाहिए। इसके साथ साथ ही उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय शिक्षा में योग्य एवं जरूरतमन्द छात्रों को निःशुल्क शिक्षा दी जानी चाहिए लक्ष्य यह हो कि कुल प्रवेश संख्या के 20 प्रतिशत छात्र निःशुल्क शिक्षा ग्रहण कर सकें।

102 पाठ्य पुस्तकों तथा लेखन सामग्री का निःशुल्क वितरण तथा निःशुल्क स्वास्थ्य सेवाएँ (जिनमें विद्यालय समय में मिलने वाला भोजन भी सम्मिलित है) भी निःशुल्क शिक्षा के अन्तर्गत माना जाना चाहिए। हरसम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तकों का मूल्य बहुत कम हो तथा जैसा कि पहिले ही निवेदन किया जा चुका है समस्त छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तकों की व्यवस्था हो तथा उनमें गुणात्मक स्तर सम्बन्धी सुधार कार्यक्रम को सर्वोच्च प्रधानता दी जाय। अन्य दोनों कार्यक्रमों का—विद्यालय चिकित्सा सेवाएँ तथा विद्यालय द्वारा दिया जाने वाला भोजन का—ज्यों ज्यों साधन उपलब्ध हों विस्तार किया जाना चाहिए।

103 छात्रवृत्तियाँ तथा छात्र-सहायता के अन्य प्रकार

छात्रवृत्ति तथा छात्र-सहायता के अन्य प्रकार के कार्यक्रमों का निम्नलिखित आधार पर विकसित किया जाना चाहिए

(i) शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्रों को छात्रवृत्तियां दी जाएँ, कुल प्रवेश संख्या के अनुपात में उनकी संख्या लगभग निम्नलिखित प्रकार से हो

स्तर	कुल प्रवेशार्थियों के अनुपात में दी जाने वाली छात्रवृत्तियाँ	
	1975-76	1985 86
उच्च प्राथमिक	2 5	5 00
माध्यमिक (सामान्य)	5 00	10 00
माध्यमिक (व्यावसायिक)	30 00	50 00
अवर स्नातक (कला एवं वाणिज्य)	15 00	25 00
अवर स्नातक (विज्ञान तथा व्यावसायिक)	30 00	50 00
स्नातकोत्तर	25 00	50 00

(ii) उच्च शिक्षा में तीन प्रकार की छात्रवृत्तियाँ होनी चाहिएँ राष्ट्रीय छात्रवृत्ति, विश्वविद्यालय छात्रवृत्ति तथा ऋण छात्रवृत्ति।

राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना में विस्तार की आवश्यकता है तथा छात्रवृत्तियों की घोषणा एवं उनका शीघ्रता से भुगतान करने के लिए इसके प्रशासन में सुधार किया जाना चाहिए। इसे अधिक से अधिक समतामूलक बनाने के लिए आवश्यक है कि आधी छात्रवृत्तियाँ राज्य स्तर पर उसी तरह प्रदान की जानी चाहिएँ जिस तरह अभी प्रदान की जा रही हैं और शेष छात्रवृत्तियों को विद्यालय पुञ्ज (School Cluster) के आधार पर वितरित किया जाना चाहिए अर्थात् छात्रों के सामाजिक एवं आर्थिक आधार में समानता के दृष्टिकोण से एक जैसे विद्यालयों का एक पुञ्ज बनाया जाय तथा प्रत्येक विद्यालय पुञ्ज के श्रेष्ठतम छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिएँ।

राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों के पूरक के रूप में विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियाँ तथा ऋण छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम लागू किये जाने चाहिएँ। ऋण छात्रवृत्तियों की व्यवस्था राष्ट्रीय ऋण छात्रवृत्ति बोर्ड द्वारा की जानी चाहिए और इसे विज्ञान तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के छात्रों के लिए विशेष उपयोगी बनाया जाना चाहिए क्योंकि इन्हीं क्षेत्रों में सेवायुक्ति एवं आय की अपेक्षाकृत अच्छी सम्भावनाएँ हैं। यदि कोई छात्र राष्ट्रीय ऋण छात्रवृत्ति प्राप्त करता है और तत्पश्चात् अध्यापन व्यवसाय में प्रवेश करता है, तो प्रति सेवा-वर्ष में ऋण का दसवाँ भाग हमेशा के लिए वसूल करने से छोड़ दिया जाना चाहिए।

(iii) विदेश में अध्ययन करने हेतु सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा-सम्पन्न छात्रों को छात्रवृत्ति देने से सम्बन्धित एक राष्ट्रीय कार्यक्रम होना चाहिए तथा लगभग

500 छात्रवृत्तियाँ प्रतिवर्ष वितरित की जानी चाहिएँ ।

(iv) छात्रवृत्ति की राशि इतनी होनी चाहिए कि उससे सभी खर्च पूरे हो जाएँ जैसे सपरिवार रहने वाले छात्रों का शिक्षण-शुल्क तथा अन्य निजी खर्चे, जैसे पुस्तकें आदि । जिन छात्रों को छात्रावासों में रहना पड़े उन्हें आवास एवं भोजन-सम्बन्धी व्यय को वहन करने के लिए अतिरिक्त राशि दी जानी चाहिए ।

(v) सर्वोत्कृष्ट परिणाम प्राप्त हो सकें इसलिए छात्रवृत्ति कार्यक्रम में इन दो अन्य कार्यक्रमों को भी सम्मिलित किया जाना आवश्यक है :

(अ) प्रत्येक क्षेत्र में तथा प्रत्येक स्तर पर श्रेष्ठ संस्थाओं की पर्याप्त संख्या में व्यवस्था

(ब) एक ऐसे कार्यक्रम का विकास जिसके अन्तर्गत छात्रवृत्ति प्राप्त छात्र इन श्रेष्ठ संस्थाओं में प्रवेश पा सकें ।

(vi) उच्च शिक्षा के क्षेत्र में छात्रवृत्ति प्रदान करने का अधिकांश उत्तरदायित्व भारत सरकार को वहन करना चाहिए । विद्यालय स्तर पर यह उत्तरदायित्व राज्य सरकारों को वहन करना चाहिए जिन्हें आगामी दस वर्षों तक अपने इस उद्देश्य में एक केन्द्रीय रूप से संचालित कार्यक्रम के माध्यम से सहायता दी जानी चाहिए ।

(vii) छात्रों को सहायता देने सम्बन्धी अन्य तरीकों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । इसके अन्तर्गत यातायात की सुविधाएं, छात्रावास के स्तर में कमी, छात्रवृत्तियाँ, निजी अध्ययन कक्षों की व्यवस्था और आय उपार्जन करते हुए सीखने की सुविधाओं को भी सम्मिलित कर सकते हैं ।

101 अपंग बालकों के लिए शिक्षा

इस क्षेत्र में एक उचित लक्ष्य होगा कि 15 प्रतिशत अन्धे, बहरे, गूंगे तथा अपंग बालकों तथा लगभग 5 प्रतिशत मानसिक रूप से अविकसित बालकों को 1986 तक शिक्षा की व्यवस्था की जाय । इसके साथ-साथ अन्य प्रकार के [illegible] वाले मानसिक आघात से पीड़ित तथा मानसिक रूप से कमजोर बालकों की शिक्षा के लिए भी प्रायोगिक सेवाओं (Services on Pilot Basis) का विस्तार किया जाय । अपंग बालकों की शिक्षा के विभिन्न [illegible] संस्था [illegible] प्रोत्साहित की जानी चाहिए तथा एक [illegible] में कार्यक्रम का कार्यान्वयन करने

ना हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए, जिससे अंततः अपंग बालक नियमित विद्यालयों में अध्ययन कर सकें। इस क्षेत्र में कार्यरत शिक्षकों के प्रशिक्षण, शोध कार्य तथा विभिन्न अभिकरणों में तालमेल स्थापित करने की दिशा में भी विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

105 क्षेत्रीय असंतुलन

शैक्षिक विकास की दृष्टि से विभिन्न राज्यों में बहुत बड़ा अंतर है और जिला-स्तर पर तो यह अन्तर और अधिक होता है। इस असमानता का न सम्पूर्णतः मिटा देना सम्भव है और न वांछित है। फिर भी एक संतुलनकारी घटक (Balancing Factor) की आवश्यकता है अर्थात् सुनियोजित एवं दोषपरिहार प्रयत्नों द्वारा कम विकसित क्षेत्रों की सहायता की जाय ताकि वे कम से कम एक निश्चित न्यूनतम स्तर प्राप्त कर सकें एवं उनमें और अधिक विकसित क्षेत्रों में अधिक चौड़ी खाई न रहे। इस हेतु शैक्षिक आयोजना तथा विकास के निमित्त जिले को मूल इकाई माना जाना चाहिए। एक ही राज्य के विभिन्न जिलों में शैक्षिक विकास के स्तर को समान करने के लिए सुनियोजित रूप से कोई नीति अपनाई जानी चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राज्यों में शैक्षिक विकास के स्तर में समानता लाने के लिए भारत सरकार को प्रयत्न करने चाहिएँ।

106 बालिकाओं की शिक्षा

यद्यपि गत कुछ वर्षों में बालिकाओं की शिक्षा बालकों की शिक्षा की तुलना में तीव्र गति से बढ़ रही है फिर भी उनमें बहुत बड़ा अंतर है। उदाहरणार्थ 1965-66 में प्रत्येक नामांकित 100 बालकों के पीछे बालिकाओं की संख्या इस प्रकार थी: निम्न प्राथमिक स्तर पर 55, प्राथमिक स्तर पर 35, माध्यमिक स्तर पर 26, विश्वविद्यालय स्तर (सामान्य शिक्षा) पर 21, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (विद्यालय स्तर) में 23 तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों (महाविद्यालय स्तर) में 14। प्राथमिक स्तर पर इस अन्तर को समाप्त करने तथा अन्य उच्चतर स्तरों पर इसे कम करने की आवश्यकता है। महिला शिक्षा की राष्ट्रीय समिति ने जैसा कि सिफारिश की है, महिला शिक्षा पर आगामी कुछ वर्षों में अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके विकास के लिए विशिष्ट योजनाएँ बनाई जानी चाहिए तथा प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक राशि जुटाई जानी चाहिए। दोनों ही केन्द्र और राज्यों में बालिकाओं तथा महिलाओं की शिक्षा की उन्नति के लिए एक विशिष्ट मशीनरी स्थापित की जाए।

107 जहाँ जनता की माँग हो और प्रशासनिक दृष्टि से सम्भव हो, वहाँ माध्यमिक तथा अवर स्नातक स्तर की बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था अलग से की जाय। कला, मानवीय विषयों, विज्ञान तथा तकनीकी पाठ्यक्रमों में छात्राओं को प्रवेश का उन्मुक्त सुविधा हो। इसके अतिरिक्त उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर छात्राओं को उनके विशेष रुचि, जैसे गृहविज्ञान, उपचर्या शिक्षा, सामाजिक कार्य अथवा व्यापार प्रशासन तथा व्यवस्था आदि पाठ्यक्रमों को उपलब्ध कराने के प्रयत्न किये जाने चाहिएँ।

108 शिक्षित महिलाओं को रोजगार दिलाने की मुख्य समस्या पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि विवाह की आयु सीमा में निरन्तर वृद्धि होती रहने के कारण लगभग सभी अविवाहित एवं वय प्राप्त महिलाओं के लिए पूर्णकालिक रोजगार की व्यवस्था करनी होगी। ज्यों ज्यों परिवार नियोजन बढ़ता जा रहा है उन अधिक आयु वाली महिलाओं के लिए भी रोजगार के अवसर जुटाने होंगे, जिनके बालक बड़े होते जा रहे हैं। शिक्षित महिला वर्ग (Woman Power) का उपयोग उठाने के लिए उचित माध्यम विकसित करने के साथ साथ अंशकालिक रोजगार के अवसर खोज निकालने होंगे ताकि महिलाएँ अपने घरों की देखभाल भी कर सकें और कोई घर के बाहर व्यवसाय भी अपना सकें।

109 शिक्षा के हर स्तर तथा हर क्षेत्र में अध्यापिकाओं की नियुक्ति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हें अंशकालिक रोजगार के अवसर भी बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध कराये जाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने के लिए, अध्यापिकाओं को आकर्षित करने हेतु प्रौढ़ महिलाओं के संक्षिप्त पाठ्यक्रम का विस्तार देना होगा तथा ग्रामीण भत्ता अथवा आवास-व्यवस्था जैसी विशेष सुविधाओं को उपलब्ध कराना होगा।

110 पिछड़ी जातियों की शिक्षा

पिछड़ी जातियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना रहना चाहिए। अनुसूचित जातियों में शिक्षा का बहुत प्रसार हुआ है। अब आवश्यकता यह है कि प्रवर्तित नीति विकास के कार्यक्रमों का बड़ा अधिक सीमा तक विस्तार किया जाय जिसके अन्तर्गत रोजगार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराने तथा सामाजिक अलगाव के अवशिष्ट चिह्नों को समाप्त करने पर बल दिये जाने की आवश्यकता है। घुमक्कड़ जातियों तथा विमोचित जनजातियों को शिक्षित करने की कठिन समस्या को हल करने के लिए अधिक गहराई से कार्य करने की आवश्यकता है। इसके लिए छात्रावासों की

व्यवस्था पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। अनुसूचित जातियों में शिक्षा के विस्तार में जो आर्थिक एवं सामाजिक कठिनाइयाँ हैं उन्हें समाप्त करने के लिए बहुत ही एकाग्र होकर प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

प्राथमिक स्तर पर सुविधाएँ जुटानी होंगी तथा दूर-दूर बसे क्षेत्रों में आश्रम विद्यालय खोलने होंगे। अध्यापक वहाँ की जनजातीय भाषा का अनिवार्य रूप से जानकार होना चाहिए। प्रथम दो वर्षों की विद्यालयी शिक्षा का माध्यम जनजाति भाषा होना चाहिए तथा इस काल में बच्चों को क्षेत्रीय भाषा में मौखिक शिक्षा दी जानी चाहिए। तृतीय वर्ष में क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम बनाया जानी चाहिए। विद्यालय के कार्यक्रम वहाँ के वातावरण एवं जीवन से सम्पृक्त होने चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों, छात्रावास-सम्बन्धी सुविधाओं तथा छात्रवृत्तियों में बहुत अधिक वृद्धि करनी होगी। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में छात्रवृत्ति कार्यक्रम से सम्बन्धित प्रशासन को विकेन्द्रित करना होगा और उसे अधिक कुशलतापूर्वक चलाना होगा। दोनों ही माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तरों पर विशेष अध्यापन की व्यवस्था करनी होगी।

जनजातियों की सेवा में अपने को समर्पित कर सकने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि करना परमावश्यक है। प्रारम्भिक अवस्था में तो इनमें से अधिकांश लोग जनजातियों के बाहर से होंगे, परन्तु प्रयत्न करना होगा कि स्वयं जनजातियों में से ही ऐसे व्यक्ति तैयार हों।

कुछ विशेष कार्यक्रम

111 सभी स्तरों एवं सभी क्षेत्रों की शिक्षा से सम्बन्धित उक्त सामान्य कार्यक्रमों के साथ साथ यह भी आवश्यक है कि विभिन्न स्तरों तथा विभिन्न क्षेत्रों में कुछ विशेष कार्यक्रम विकसित किये जायें ताकि देश के लिए आवश्यक शिक्षा के मूलभूत रूपान्तरण को पूरा किया जा सके। इनमें सम्मिलित हैं

—माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण (वोकेशनलाइजेशन)
—उच्च अध्ययन के केन्द्र तथा मुख्य विश्वविद्यालय, सम्पूर्ण विश्वविद्यालय व्यवस्था का संगठन करना,
—विज्ञान तथा तकनीकी (जिसमें इन्जीनियरी तथा कृषिविज्ञान की शिक्षा भी सम्मिलित है)
—शैक्षिक ढाँचे का पुनर्गठन,
—प्रौढ़ शिक्षा
—पूर्व प्राथमिक शिक्षा,
—शारीरिक श्रम और,
—नैतिक शिक्षा।

इनके विषय में आगे के पृष्ठों में विचार किया गया है।

112 माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में एक तो यह कि माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण किया जाय—लक्ष्य यह है कि 1986 तक निम्न माध्यमिक तथा माध्यमिक स्तर पर सामान्य छात्रों में से 20 प्रतिशत तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक पाठ्यक्रम उपलब्ध कराए जा सकें। इन सुविधाओं को रोजगार की आवश्यकताओं से सम्बद्ध करना होगा। इस प्रकार आवश्यकता यह है कि कर्मचारी वर्ग जो इस समय स्तर की ही शिक्षा प्राप्त है की जन शक्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं का हर क्षेत्र में सही सही अनुमान लगाने के लिए ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाय। जन शक्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने से पूर्व आवश्यक है कि व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए संस्थाओं की स्थापना तथा

प्रशिक्षण कार्यक्रमों का गठन तथा वर्तमान में चल रहे कार्यक्रमों में वांछित सुधार और प्राप्त सुविधाओं का विस्तार आदि समय वाताओं जन-बल सम्बन्धी आवश्यकताओं के विषय में भविष्यवाणी करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए।

113 इस स्तर पर उपलब्ध करायी जाने वाली व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम कई क्षेत्रों से सम्बन्धित होंगे जैसे कृषि उद्योग व्यापार एवं वाणिज्य, चिकित्सा तथा जन स्वास्थ्य गृह-व्यवस्था कला तथा हस्तकला साचिविक कार्य इत्यादि। इन पाठ्यक्रमों का उद्देश्य न केवल सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्रों में रोजगार की सुविधाएं उपलब्ध कराना होना चाहिए अपितु स्वय रोजगार में लगजाने की क्षमता पैदा कर देना भी होना चाहिए। इन पाठ्यक्रमों को एम छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करनी चाहिए जो विभिन्न स्तरों की सामान्य शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं उदाहरणार्थ जो प्राथमिक अथवा निम्न माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों को पूरा करने से पहले ही विद्यालय छोड़ चुके हैं। इनका सगठन बहुत लचीला होना चाहिए। शिक्षुता (Apprenticeship) अल्पकालिक, डे रिलीज पत्राचार तथा सघन पाठ्यक्रमों के आधार पर व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए। शिक्षा संस्थाएं (सामान्य तथा व्यावसायिक) सुगठित काम तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान विभिन्न सस्थाओं अथवा इन सबके सम्मिलित प्रयत्नों के माध्यम से उक्त पाठ्यक्रमों का विकसित किया जाना चाहिए।

114 कृषि शिक्षा

प्राथमिक अथवा निम्न माध्यमिक स्तर पर कृषि में औपचारिक शिक्षा देने से सम्बन्धित प्रयत्न अभी तक सफल नहीं हुए हैं और सफलता प्राप्त होने की तब तक कोई आशा भी नहीं है जब तक कि शिक्षित व्यक्तियों को ऐसे तरीकों द्वारा कृषि-कार्य के प्रति आकर्षित नहीं किया जाता जो कृषि को पर्याप्त रूप में अर्थोपार्जन के योग्य न बना दें और जब तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम कुछ निश्चित न्यूनतम सुविधाओं की व्यवस्था नहीं की जाती। अतएव यह वांछनीय है कि निकट भविष्य में विद्यालय स्तर पर निम्न बिन्दुओं के आधार पर कृषि शिक्षा का विकास किया जाय।

(1) सभी प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों का जिनमें ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालय भी सम्मिलित हैं अपने कार्यक्रमों को कृषि की ओर प्रवृत्त करना चाहिए। इसके लिए कृषि-सम्बन्धी किसी विशेष पाठ्यक्रम की आवश्यकता नहीं है, अपितु सामान्य विज्ञान जीव विज्ञान सामाजिक ज्ञान गणित आदि

प्रचलित पाठ्यक्रमों का इस तरह पुनर्स्थापन किया जाय कि उनमें ग्राम्य वातावरण तथा कृषि विकास से आनेवाली समस्याओं का समावेश हो जाय। इस स्तर पर कृषि को कार्यानुभव का महत्त्वपूर्ण अंश बना देना भी लाभदायक रहेगा।

(ii) कक्षा 10 से पूर्व कृषि की औपचारिक शिक्षा देने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए। भविष्य में कृषि को व्यवसाय के रूप में अपनाया जा सके, इसकी तैयारी के लिए इतना ही पर्याप्त है कि छात्रों को इस स्तर पर सामान्य शिक्षा के साथ-साथ गणित तथा विज्ञान की शिक्षा का विशेष ज्ञान करा दिया जाय।

(iii) कक्षा 10 के बाद कृषि की औपचारिक शिक्षा आरम्भ की जानी चाहिए और वह भी कृषि की पोलिटेक्निक संस्थाओं के माध्यम से। ये संस्थाएं एक प्रकार से बहुद्देशीय संस्थाएँ होंगी, जहाँ कृषि तथा तत्सम्बन्धी धंधों के लिए आवश्यक कुशलताओं का प्रशिक्षण दिया जायगा तथा इनके पाठ्यक्रम छः मास से लेकर तीन वर्ष तक की विभिन्न अवधि वाले होंगे। इनके गठन में पर्याप्त लचीलेपन की छूट होनी चाहिए। परन्तु इनके पाठ्यक्रम बहुत ही व्यावहारिक तथा मुख्य रूप से सम्पूर्णता लिए हुए होने चाहिएँ। सामान्यतया इनका उद्देश्य कोई विशिष्ट रोजगार दिलाना होना चाहिए किन्तु ऐसी समुचित व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए कि चाहे तो कोई बहुत ही मेधावी छात्र अधिक अध्ययन करके उच्च शिक्षा में सम्बन्धित पाठ्यक्रम में प्रवेश ले सके। इन पोलिटेक्निक संस्थाओं में विशेष रूप से युवा कृषकों तथा ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रमों की व्यवस्था भी होनी चाहिए। आर्थिक व्यवस्था एवं कुशलता की दृष्टि से ये संस्थाएँ बहुत विशाल होनी चाहिए जिनमें लगभग एक हजार छात्र प्रवेश ले सकें तथा जहाँ कहीं भी सम्भव हो ये संस्थाएँ कृषि विश्वविद्यालय के घनिष्ठ सहयोग से विकसित की जानी चाहिए।

(iv) यह सत्य है कि प्रारम्भिक अथवा माध्यमिक पाठ्यक्रम की शिक्षा प्राप्त (अथवा जो कृषि पोलिटेक्निक संस्थाओं या विश्वविद्यालयों में विशेष शिक्षा प्राप्त कर चुके होंगे) अधिकाधिक संख्या में युवक बाजार में कृषि कार्य को अपना व्यवसाय बनायेंगे। किन्तु आगामी कुछ वर्षों में जो युवक कृषि को व्यवसाय के रूप में चुनेंगे उनमें से अधिकांश वे लोग होंगे जिन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को समाप्त करने से पूर्व ही विद्यालय त्याग दिया था। ऐसे व्यक्तियों को आवश्यक कृषि शिक्षा देने के निश्चित प्रकार तथा

कार्यक्रमों को सुदृढ़ बनाना होगा तथा प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में एक प्राथमिक प्रसार सेवा केन्द्र स्थापित किया जाना चाहिए। इन केन्द्रों पर कार्यरत कर्मचारी वर्ग उन कृषकों की तुलना में व्यावहारिक ज्ञान में श्रेष्ठ होने चाहिएं जिनको कि उन्हें शिक्षित कराना है, उस क्षेत्र के सफल कृषक इन केन्द्रों के माध्यम से इन केन्द्रों को पथ प्रदर्शन तथा अधिकाधिक सहयोग मिलते रहना चाहिए। आसपास के युवक कृषकों को चाहे अल्पकालिक चाहे संक्षिप्त पाठ्यक्रम के आधार पर कृषि शिक्षा देने के निमित्त इन केन्द्रों का उपयोग किया जाना चाहिए।

115 उद्योग के लिए शिक्षा

उद्योगों में कार्यरत अर्द्ध कुशल तथा कुशल कारीगरों तथा मध्यस्तरीय मिस्त्रियों को प्रशिक्षण देने के चार मुख्य साधन हैं अर्थात् औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आई टी आई) कनिष्ठ तकनीकी विद्यालय तकनीकी उच्च विद्यालय, पालिटेक्निक तथा एपरेन्टिसशिप एक्ट के अंतर्गत प्रदत्त सुविधाएं। इनके अलावा और भी अन्य साधन हैं जैसे सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत विकसित कारीगर प्रशिक्षण केन्द्र खादी एवं ग्राम्य उद्योग कमीशन के अन्तर्गत स्थापित हस्तकला प्रशिक्षण केन्द्र व्यापार विद्यालय (सरकारी एवं निजी) तथा बहुउद्देशीय माध्यमिक विद्यालयों में व्यावसायिक प्रशिक्षण। इन संस्थागत प्रशिक्षण के अलावा वर्तमान श्रमशक्ति का एक अंश ऐसा भी है जो काम पर सीधा लग जाने के बाद काम करते करते सीखा है अथवा जो परम्परा से चले आ रहे पैतृक धंधे में पिता से पुत्र के आधार पर प्रशिक्षण प्राप्त है। अभी भी जो सुविधाएं उपलब्ध हैं वे आधुनिक उद्योगों की आवश्यकताओं को मद्दे नजर रखते हुए अपर्याप्त हैं और बहुधा वे गुणात्मकता के दृष्टिकोण से उत्कृष्टतर की हैं।

116 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों का बहुत अधिक विस्तार करना होगा। उन छात्रों के लिए अधिक स्थान उपलब्ध कराए जाने चाहिए जो प्राथमिक शिक्षा पूरी कर चुके हैं। इस दृष्टि से प्रवेश आयु की न्यूनतम सीमा 14 वर्ष हो इस पर विचार किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण उत्पादनोन्मुख होना चाहिए इसके लिए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे कारखानों से उत्पादन कार्य प्राप्त करें तथा अन्य शैक्षिक संस्थाओं में उपयोग हेतु सामग्री का निर्माण करें।

117 कनिष्ठ तकनीकी विद्यालयों का पुनर्नामकरण किया जाए अर्थात्

उन्हें तकनीकी उच्च विद्यालय की संज्ञा प्रदान की जानी चाहिए क्योंकि 'कनिष्ठ' शब्द का कोई तात्पर्य ही नहीं निकलता। वर्तमान तकनीकी उच्च विद्यालयों को साथ साथ उन्हें भी कुशल कारीगरों को प्रशिक्षण देने वाले विद्यालयों में परिवर्तित कर दिया जाना चाहिए जो दोनों ही छात्रों तथा नियोक्ताओं को आकर्षित कर सकें तथा इन्हें सामान्य माध्यमिक शिक्षा का मजबूरी में अपनाया जाने वाला विकल्प या इन्हें पालिटेक्निक विद्यालयों के लिए प्रवेश योग्यता का खर्चीला तैयारी स्थल न समझा जाय। पाठ्यक्रम स्पष्ट रूप से व्यावसायिक होने चाहिए तथा उपलब्ध समय के अधिकतम उपयोग द्वारा इन पाठ्यक्रमों को इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि एपरेंटिसशिप एक्ट की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके (इस एक्ट की धाराओं में ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि इन विद्यालयों द्वारा सम्पन्न पाठित छात्रों की नियुक्ति की जा सके)। इन पाठ्यक्रमों की समाप्ति पर व्यापार प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाने चाहिएँ। यह आवश्यक नहीं है कि पाठ्यक्रम की अवधि तीन वर्ष ही हो। विभिन्न पाठ्यक्रमों के आधार पर अवधि को घटाया बढ़ाया भी जा सकता है, लेकिन इन सभी विद्यालयों में प्रायोगिक कार्य तथा व्यावहारिक विज्ञान पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। इन सिद्धान्तों के आधार पर पुनर्गठित करने तथा वर्तमान शिक्षा में असन्तुलन को गति को कम किये जाने के परिणामस्वरूप तथा सामान्य शिक्षा को अधिक महत्व देने के फलस्वरूप कुशल कारीगर तैयार करने के दृष्टिकोण से ये तकनीकी उच्चविद्यालय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं तथा सामान्य माध्यमिक विद्यालयों की तुलना में अधिक अच्छा विकल्प सिद्ध हो सकते हैं।

119 पालिटेक्निक संस्थाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। वर्तमान में जो उनमें असन्तुलन की ऊंची दर है उसे कम किया जाकर उनमें चल रहे पाठ्यक्रमों को निम्नलिखित आधार पर पुनर्व्यवस्थित किया जाना चाहिए—

(i) कारखानों के सहयोग से विशेषज्ञतापूर्ण पाठ्यक्रम दिया जाना चाहिए जिसका उद्देश्य एक कार्य (जॉब) का विश्लेषण करना तथा विभिन्न स्तरों पर कुशल कारीगरों को उत्तरोत्तर क्रम से मिस्त्रियों से उत्पादकों के बारे में जानकारी प्राप्त करना। इन दो विषयों को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यक्रमों को व्यवस्थित किया जाना चाहिए। इन संशोधनों का लक्ष्य निम्न श्रेणी के इलेक्ट्रिकल तथा इन्डस्ट्रियल, कुशलता प्राप्त शिल्पी तैयार करना हो।

(ii) प्रत्येक स्तर का औद्योगिक अनुभव उपलब्ध कराया जाना

चाहिए और वह भी विशेषत प्रशिक्षण के अन्तिम वर्ष म इस प्रकार प्रशिक्षण का अधिकाधिक व्यावहारिक रूप दिया जाय। इस दृष्टिकोण से पालिटेक्निक सस्थाओ को औद्योगिक क्षत्रो म ही आवश्यक रूप से स्थापित करना होगा।

(iii) कर्मचारी वर्ग के वतन म उचित मात्रा म वृद्धि की जानी चाहिए तथा तकनीकज्ञो को समाज तथा उद्योग म उच्च स्तर प्रदान किया जाना चाहिए, ताकि इस समय महसूस की जा रही कमी को पूरा किया जा सक। अध्यापक इजानियरिंग महाविद्यालय से स्नातक उपाधि प्राप्त होने के साथ साथ अच्छा व्यावहारिक अनुभव सम्पन्न भी हो। उद्योगो म काय कर रहे व्यक्तियो को शिक्षक बनाये जाने का अधिक प्रयत्न किया जाना चाहिए। पोलिटेक्निक सस्थाओ क कर्मचारी वर्ग (जिनम हाल ही म नियुक्त कमचारी भी सम्मिलित हैं) के लिए ग्रीष्म विद्यालयो क विस्तृत कायक्रमो का आयोजन किया जाना चाहिए। पालिटेक्निक सस्थाओ के शिक्षको के लिए प्रशिक्षण महाविद्यालयो के साथ-साथ क्षत्रीय इजानियरिंग महाविद्यालयो तथा तकनीकी सस्थाओ म विशिष्ट पाठ्यक्रम आरम्भ किय जाने चाहिए ताकि प्रशिक्षणार्थियों को शिक्षण अभ्यास एव उत्पादन अनुभव सम्बन्धी नवीन ज्ञान दिया जा सक। आधारभूत विज्ञानो के सम्बन्ध म भी पाठ्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिए।

(iv) प्रत्यक पालिटेक्निक म साधन सम्पन्न सुव्यवस्थित कायशालाए तथा प्रयोगशालाए होनी चाहिए तथा उनका पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। अवकाश के दिनों म छात्र व अध्यापको को हाथ से चलाए जाने वाले यन्त्रो मशीन यन्त्रो द्वारा लथ तथा ड्रिलिंग मशीन आदि की सहायता स या तो विद्यालय के लिए अथवा माध्यमिक विद्यालयो को सामान उपलब्ध करवाने के लिए उत्पादन काय करना चाहिए।

(v) उद्योगो के माध्यम स पर्याप्त सख्या म तकनीकज्ञ प्राप्त होते रहे और प्राप्त होत रह इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित भी करते रहना चाहिए। कारखानो के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम आरम्भ करके पालिटेक्निक सस्थाए इस दिशा म काफी सहयोग कर सकती हैं यद्यपि अधिक सफलता तो कारखाना क सहयोग स निर्मित अन्तर्वर्तिक्रमीय पाठ्यक्रम (Sandwich type Cour ses) को बडी सस्थाओं म चलाए जान पर ही मिलेगा।

(vi) सभी पालिटेक्निक सस्थाओ म महिलाओ की विशेष रुचि क सर्वोपरि पाठ्यक्रमो को विकसित करने के लिए मुख्य रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

(vii) पालिटेक्निक सस्थाओ म विज्ञान एव गणित शिक्षण का

विस्तृत पालिटेक्निक संस्थाओं के प्रथम दो वर्ष के शिक्षण में, अधिक दृढ़तापूर्वक चलाया जाना चाहिए । तकनीकज्ञों के निमित्त पाठ्यक्रमों में औद्योगिक मनोविज्ञान एवं व्यवस्था, मूल्य निर्धारण तथा अनुमानितकरण का प्रारम्भिक ज्ञान दिया जाना चाहिए ।

(viii) जिन तकनीशियनों को किसी उद्योग में कुछ वर्ष का अनुभव प्राप्त है उनके लिए चुनिन्दा पालिटेक्निक संस्थाओं में स्नातकोत्तर उपाधि पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि वे उच्च श्रेणी के तकनीकज्ञ की योग्यता प्राप्त कर सकें ।

119 कृषि एवं उद्योग शिक्षा पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में जो विवेचन ऊपर प्रस्तुत किये गये हैं उनके अलावा व्यापारिक निपिकवर्गीय, वाणिज्य तथा औद्योगिक कलाओं तथा महिलाओं की विशेष रुचि से सम्बन्धित क्षेत्रों में रोचक पाठ्यक्रम तैयार किये जाने की भी बहुत गुंजाइश है । इसका पूरा तरह उपयोग किया जाना चाहिए ।

120 तकनीकी उच्च विद्यालय कनिष्ठ तकनीकी विद्यालय पालिटेक्निक तथा अन्य व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में शिक्षा प्राप्त युवकों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे या तो अपने स्वयं के छोटे मोटे उद्योग प्रारम्भ करें अथवा दूसरों के साथ मिलकर छोटे पैमाने पर कारखाने लगायें या ऐसे उद्योग या ऐसी गतिविधियों में अपने आप को अर्पित करें जिनकी कि समाज को आवश्यकता है ।

21 उन्नत अध्ययन के केन्द्र तथा प्रमुख विश्वविद्यालय

भारतीय शिक्षा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण तात्कालिक आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता किसी एक कार्यक्रम को अपनाये जाने की भी है कि जिससे निर्वाचित कार्यान्वयन से उच्च शिक्षा के स्तर में निरन्तर वृद्धि होती रहे । इस उद्देश्य से अध्यापकों तथा छात्रों की श्रेणियों को सक्रिय कार्य देने सम्बन्धी योजनाएँ ... समय गुणात्मकता की दृष्टि से अधिकतम अधिकतम मात्रा में

यह सर्वाधिक धीमा किन्तु प्रभावशाली मार्ग है, जिसके द्वारा आरम्भ स्वरूप उच्च शिक्षा के स्तर में सचतामुखी सुधार किया जा सकता है। क्रमश शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में तथा जीवन के समस्त पक्षों में इसी तरह सुधार किया जा सकेगा।

122 इस दृष्टिकोण से जिस महत्वपूर्ण कार्यक्रम को सशक्त बनाया जाना है एवं विस्तृत किया जाना है—वह उन्नत अध्ययन केन्द्रों की स्थापना। विश्वविद्यालयों को साधनों के उचित समायोजना द्वारा सहायता दी जानी चाहिए कि वे सुनिश्चित विभागों में श्रेष्ठता प्राप्त कर सकें और अन्ततोगत्वा उनको उन्नत अध्ययन केन्द्रों के स्तर तक विकसित कर सकें।

✓ किसी विश्वविद्यालय के विभाग को उन्नत केन्द्र के लिए चुनने का आधार उस विभाग द्वारा अब किए गए काम की मात्रा और उसका स्तर, अन्वेषण के क्षेत्र में उसे प्राप्त प्रतिष्ठा, शोध क्षेत्रों में उसका योगदान तथा भावी विकास की उसकी सम्भावनाएं होनी चाहिए। चयन की पद्धति इस तरह अपनाई जानी चाहिए कि उसे विश्वविद्यालयों तथा शैक्षिक समुदाय का विश्वास सामान्यत प्राप्त हो जाय। यदि आवश्यक हो तो उस विभाग को आरम्भ में एक सम्भावित केन्द्र समझा जाय तथा आरम्भिक अवस्था में कर्मचारीवर्ग तथा आवश्यक पुस्तकें एवं उपकरणों को जुटाने के लिए पांच वर्ष तक विशेष आर्थिक सहायता दी जा सकती है। प्रगति सतोषजनक हो तो आगामी पांच वर्षों के लिए फिर से सहायता को स्वीकृत किया जा सकता है।

उन्नत केन्द्र बने रहने की सुविधा निरन्तर योग्य एवं प्रयत्नशील बने रहने पर ही दी जानी चाहिए। तीन से पांच वर्षों के बीच में कम से कम एक बार 'विजिटिंग कमिटी' को प्रत्येक उन्नत केन्द्र का निरीक्षण करना चाहिए। इस विजिटिंग कमिटी के सदस्य सुविख्यात भारतीय तथा जहाँ सम्भव हो विदेशी विशेषज्ञ हों। यह कमिटी केन्द्र के कार्यों का मूल्यांकन तथा पुनर्विलोकन करे।

123 किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। यदि श्रेष्ठ परिणाम अभीष्ट है तो आवश्यक है कि उन्नत केन्द्रों को इस योजना में एक और दिशा का भार प्रारम्भ किया जाय तथा पांच अथवा छः विश्वविद्यालयों के बीच सम्बन्धित विषयों में उन्नत अध्ययन केन्द्रों का एक ऐसा पुञ्ज तैयार किया जाय जो एक दूसरे को सम्पुष्ट करें। केवल ऐसा करने पर ही ऐसा आवश्यक वातावरण निर्मित हो सकेगा कि जिसमें प्रथम श्रेणी स्नातकोत्तर कार्य तथा शोध कार्य किया जा सकेगा और तभी कम से कम कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में

ऐसा स्तर उपलब्ध हो सकेगा जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के समतुल्य हो।

12.4 इनमें से प्रत्येक विश्वविद्यालय को मेधावी छात्र विशेष क्षमतावान तथा होनहार अध्यापक तथा प्रथम श्रेणी की सुविधाएँ और उपकरण उपलब्ध कराये जाने के प्रयत्न किए जाने चाहिए

(i) प्रत्येक विश्वविद्यालय में अधिस्नातक और स्नातकोत्तर स्तर की छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए जिससे प्रतिभावान छात्रों को प्रवेश दिया जा सके। लगभग आधी छात्र वृत्तियाँ ऐसे छात्रों को दी जायें जो उस केन्द्र के क्षेत्र के बाहर के हों।

(ii) इन केन्द्रों के लिए आवश्यक अध्यापकों को प्राप्त करने के प्रयत्न सम्बन्धित राज्य तथा क्षेत्र तक ही सीमित न होकर राष्ट्रव्यापी और एक तरह से विश्वव्यापी होने चाहिए। चयन पद्धति लचीली होनी चाहिए। जहाँ आवश्यक हो चुने हुए अभ्यर्थियों को अग्रिम वेतन वृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए तथा उन्हें भावी अवसर अध्ययन अवकाश की सुविधा और व्यावसायिक श्रेष्ठता प्राप्त करने की सम्भावनाओं के प्रति आश्वस्त किया जाना चाहिए। पदोन्नति के समय उदारता से काम लिया जाना चाहिए तथा आवश्यक धन भी उपलब्ध होना चाहिए ताकि विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए अच्छा वेतन दिया जा सके।

(iii) प्रतिभावान छात्रों तथा अध्यापकों के इस समूह को पर्याप्त सुविधाएँ तथा सन्तोषजनक सेवा शर्तें उपलब्ध कराना भी समानरूप से आवश्यक है। आवास बहुत खर्चीला हो ऐसा आवश्यक नहीं है क्योंकि महत्व तो सादगी और उपयोगिता को दिया जाता है न कि सजावट एवं शान को।

12.5 ग—मुख्य विश्वविद्यालय तथा उन्नत अध्ययन के केन्द्र सम्बद्ध अध्यापकों का निर्माण करके उच्च शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस दृष्टिकोण से निम्नांकित प्रयत्न किए जाने चाहिएँ

(i) विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त प्रतिभावान छात्रों को शिक्षण व्यवसाय के प्रति आकर्षित करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए। इनमें से अधिकांश को उन महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में भेजा जाए जहाँ उन्होंने अध्ययन प्राप्त न किया हो। इसके निमित्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक केन्द्रीय विनिमय अभिकरण स्थापित करे।

(ii) शिक्षण व्यवसाय में सम्बद्ध व्यक्तियों की नियुक्ति को सुविधाजनक बनाने के दृष्टिकोण से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को एक योजना के अन्तर्गत कुछ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना चाहिए। ये छात्रवृत्तियाँ

तीन स्तरों पर प्रदान की जानी चाहिएँ—व्याख्याता, रीडर तथा प्राध्यापक (प्रोफेसर)। ये छात्रवृत्तियाँ उन विशेष योग्यता सम्पन्न व्यक्तियों को दी जानी चाहिए जो अन्यथा इस व्यवसाय में न आ पायें तथा इन व्यक्तियों को विश्वविद्यालय के विभाग में कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखा जाय कि उनकी नियुक्ति यथा सम्भव शीघ्र स्थायी पदों पर ही हो।

(iii) विश्वविद्यालय तथा सम्बद्ध महाविद्यालयों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि यथा शक्ति सम्भव वे अपने नये अध्यापकों का पूर्व चयन करें तथा उन्हें मुख्य विश्वविद्यालय अथवा उन्नत अध्ययन के केन्द्रों के सम्पर्क में कुछ समय तक रखें ताकि वे व्यावसायिक दक्षता प्राप्त कर सकें।

124 बी—मुख्य विश्वविद्यालयों के स्तर को उन्नत करने की इस प्रक्रिया में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अन्य उपायों के अलावा निम्न प्रकार से भी सहयोग दिया जाना चाहिए —

(i) ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के लिए उन्नत अध्ययन के केन्द्रों के सदस्यों सम्मानित केन्द्रों के सदस्यों प्रमुख विश्वविद्यालयों के विभागों तथा विशेष सम्बद्ध महाविद्यालयों के बीच अन्तर्विश्वविद्यालीय सम्पर्क स्थापित किये जाने चाहिए।

(ii) उन्नत अध्ययन के केन्द्रों में संगोष्ठी सम्मेलन तथा शोधकार्य के निमित्त अन्य विश्वविद्यालयों अथवा सम्बद्ध महाविद्यालयों के वैज्ञानिकों तथा होनहार विद्वानों को आमंत्रित किया जा सकता है।

125 नवीन विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय

श्रेष्ठता के कुछ केन्द्र स्थापित करने के प्रयत्न उच्च शिक्षा में स्तर सुधार के सम्पूर्ण कार्यक्रम की सफलता के लिए बहुत ही आवश्यक है। किन्तु यथा सम्भव श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने के लिए तथा इन केन्द्रों में उत्पन्न श्रेष्ठता को अन्य उच्च शिक्षा की संस्थाओं तक फैलाने के लिए दो सहयोगी कार्यक्रम भी आवश्यक हैं अर्थात् नये विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की स्थापना में नियंत्रित रहना तथा सम्पूर्ण विश्वविद्यालय व्यवस्था को सुदृढ़ करना।

126 नये विश्वविद्यालयों की स्थापना करते समय उच्च योग्यतासम्पन्न शिक्षकों की, बहुत बड़ी मात्रा में धनराशि की तथा प्रशासनिक क्षमता की आवश्यकता होती है। इस मद की पूर्ति बहुत न्यून है और ऐसी स्थिति

स्थापित कर देना बहुत ही हानिकारक होगा जहाँ ये आवश्यक नहीं और अधिक कम रह जाय। हमारा सुझाव है कि नये विश्वविद्यालयों की स्थापना करते समय निम्न बातों का ध्यान में रखा जाना चाहिए

(i) नये विश्वविद्यालय की स्थापना तभी न्यायसंगत माना जा सकता है जबकि उसकी स्थापना से शिक्षा स्तर, शिक्षण कार्य तथा शोध के कार्य के स्तर सम्बन्धी सुधार पर्याप्त मात्रा में सम्भव हो।

(ii) कोई भी नया विश्वविद्यालय तब तक नहीं खोला जाना चाहिए जब तक कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की पूर्व अनुमति न मिल जाय तथा पर्याप्त राशि की व्यवस्था न की जाय।

(iii) नये विश्वविद्यालय की स्थापना से पूर्व पर्याप्त तैयारी की जानी चाहिए। नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना की दिशा में पहला प्रयत्न तो यह है कि एक विश्वविद्यालय केन्द्र स्थापित किया जाना चाहिए, अर्थात् कुछ महाविद्यालय मिलकर स्नातकोत्तर शिक्षा की सुविधाएं उत्पन्न करने के सम्बन्ध में सहयोगी प्रयत्न करें। सामान्यतया एक नवीन विश्वविद्यालय तब तक खोला जाय जब तक कि उस स्थान पर एक विश्वविद्यालय केन्द्र कुछ समय तक न चल चुका हो। दूसरे प्रथम उपकुलपति की नियुक्ति तथा विश्वविद्यालय के प्रत्यक्ष कार्यों के प्रारम्भ के बीच की अवधि कम से कम तीन वर्ष की अवश्य होनी चाहिए और इस अवधि में आयोजना कार्य उपकुलपति की सहायता करे।

127 सम्बद्ध महाविद्यालयों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की सम्मिलित नीति का अपनाना होगा। आज कम संख्या वाले महाविद्यालयों की संख्या निरन्तर तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। 30 प्रतिशत महाविद्यालयों में तो छात्र संख्या 100 से भी कम है। इससे दोनों संस्थाओं व राज्य पर अधिक आर्थिक भार होता है परन्तु अपव्यय भी होता है। अतएव जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह आवश्यक है कि उनके स्थान के सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक योजना बनायी जाय। और भी इस बात से इन्कार किया जा सकता कि राज्य या मण्डल महाविद्यालय की स्थापना उचित मात्रा में नियन्त्रित करने के लिए कदम उठाये। सुधार का उपयुक्त मापदण्ड के आधार पर संस्थाओं को मान्यता पर रोक लगाये। इसी प्रकार के नये व छोटे अथवा उपयुक्त सम्बद्ध या मान्यता का अन्त करना से उन्हें दूसरी निकट संस्थाओं में जोड़ना बुद्धिमत्ता है।

| १०५ विश्वविद्यालयों को सुदृढ़ बनाना

कार्य (शिक्षण का स्तर) और उसका स्वायत्त विश्वविद्यालय

के संचालन पर अधिकांश निर्भर करता है। अतएव यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण विश्वविद्यालय व्यवस्था को उच्च प्राथमिकता देकर सुदृढ़ किया जाय। केवल इसी तरह भारतीय विश्वविद्यालय अपने बहुविध उत्तरदायित्वों को ठीक तरह से निभा सकेंगे। इस दृष्टिकोण से जिन कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रमों को विकसित किया जाना है उनका विवरण इस प्रकार है

129 विश्वविद्यालय स्वाधीनता

सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता तो यह है कि विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता को सशक्त रूप में स्थापित किया जाये। इसका मूलभूत आधार यह है कि दल अथवा सत्ता की राजनीति के दबाव अथवा विचारों की प्रतिबद्धता से स्वतन्त्र स्वाधीन संस्था ही सत्य की खोज कर सकती है तथा अपने अध्यापकों और छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन एवं स्वतन्त्र विचार विमर्श की भावना पनपा सकती है। स्वतन्त्र समाज के विकास के लिए यह अनिवार्य है। इस प्रकार की स्वाधीनता के तीन अंग हैं (1) छात्रों का चयन (2) शिक्षकों की उन्नति तथा नियुक्ति और (3) पाठ्यविषयों, शिक्षण विधियों तथा अनुसंधान की समस्याओं एवं क्षेत्रों का निर्धारण। यह सत्य है कि यह स्वाधीनता एक बड़े सन्दर्भ में ही रखी जा सकती है अर्थात् राष्ट्र के प्रति और सम्पूर्ण रूप से मानवजाति के प्रति उत्तरदायित्व की भावना। लेकिन तब तो यह और भी आवश्यक है कि ऐसी प्रवृत्तियों तथा प्रथाओं का विकास किया जाय जो विश्वविद्यालय की स्वाधीनता के प्रति तथा समाज की उचित अपेक्षाओं के प्रति न्याय कर सकें।

130 भारत में विश्वविद्यालय स्वाधीनता की बहुत अच्छी परम्परा रही है। लेकिन अब आवश्यकता है उसे सुदृढ़ करने एवं सुगठित बनाने की। सम्बन्धित पक्षों को विशेषतौर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, तथा अन्तर्विश्वविद्यालय परिषद् (I U B) को इस विषय में सतत् सजग रहना है क्योंकि ऐसी स्वाधीनता कहीं ऊपर से नहीं उतरती, यह तो विश्वविद्यालयों को स्वयं योग्य बने रहकर निरन्तर कमाना होगा।

131 विश्वविद्यालयों की वित्तीय व्यवस्था

विश्वविद्यालय-स्वाधीनता तब तक वास्तविक और प्रभावोत्पादक नहीं बन सकती जब तक कि राज्य सरकारें विश्वविद्यालयों के साथ समझदारी और सूझबूझ से काम न लें तथा उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहायता न दें, और जब तक कि सहायता में प्राप्त राशि को व्यय करने के नियम सरल नहीं बना दिये जाते। विश्वविद्यालयों को राज्यों द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता

का संशोधन सहायता (देखिए परिशिष्ट चार) व्यवस्था के आधार पर पुनर्गठित किया जाना सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ होगा। इसके अतिरिक्त यह भी होना चाहिए कि विश्वविद्यालयों में जनता के समक्ष सीधी जवाबदेही न करनी पड़े। उनका दैनिक प्रशासन अथवा उनके वित्तीय मामले न तो जन चर्चा के विषय हों और न ही दलगत राजनीति के शिकार हों और इस दृष्टि से यह वांछित ही है कि उनका हिसाब किताब संसद अथवा विधान सभाओं के समक्ष न रखा जाय। केन्द्रीय विश्वविद्यालय कानून में प्रावधान है कि विश्वविद्यालयों के जाँचे हुए लेखे इण्डिया गजट में प्रकाशित किये जाने चाहिए तथा लेखा-जाँच प्रतिवेदन के साथ विजिटर को भिजवाये जाने चाहिए। इस पद्धति से सरकार को इस बात का आवश्यक अवसर मिल जाता है कि उनकी वित्तीय तथा प्रशासनिक स्वायत्तता में अनुचित हस्तक्षेप किये बिना वह सुधार तथा निरीक्षण हेतु 'विजिटर' की ओर से कार्यवाही कर सके। उन राज्य विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही व्यवस्था को अपनाया जा सकता है, जहाँ पहले से ही कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है।

132 उपकुलपति के कार्य तथा उसकी नियुक्ति

किसी विश्वविद्यालय में उपकुलपति वह व्यक्ति होता है जिससे आशा की जाती है कि वह विश्वविद्यालय में शैक्षिक स्वतन्त्रता तथा अच्छी व्यवस्था के सिद्धान्तों का प्रतिरूप हो। विद्वानों तथा समाज के प्रति विश्वविद्यालय की प्रतिबद्धता के लिए वह उत्तरदायी होता है और विश्वविद्यालय की कार्यपालिका का वह इस तरह उपयोग कर सकता है कि शैक्षिक-वर्ग को अपनी तमाम गतिविधियों में उसका निरन्तर सहयोग मिलता रहे। उपकुलपति सामान्यतः एक प्रख्यात शिक्षा शास्त्री या विशिष्ट व्यक्ति होना चाहिए, जिसे पर्याप्त प्रशासकीय अनुभव भी हो।

उपकुलपति कौन हो इसका निर्णय स्वयं विश्वविद्यालय को करना चाहिए। विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रचलित व्यवस्था को अथवा उससे कुछ परिवर्तित रूप को अपनाया जा सकता है। उपकुलपति का चयन करने के निमित्त गठित समिति के सदस्य अपनी कर्तव्यनिष्ठा तथा विद्वता के लिए प्रख्यात होने चाहिए। यदि उनमें से कोई सदस्य विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है तो उसको समिति का सदस्य बनाने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए बशर्ते वह विश्वविद्यालय का वैतनिक कर्मचारी न हो।

उपकुलपति का कार्यकाल पाँच वर्ष होना चाहिए और उसे एक ही विश्वविद्यालय में इस पद पर दो बार से अधिक नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

विश्वविद्यालय के कुशल संचालन हेतु उपकुलपति को पर्याप्त शक्तियाँ दी जानी चाहिएँ।

133 विश्वविद्यालय के भीतर स्वाधीनता

विश्वविद्यालय स्वाधीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि विश्वविद्यालय प्रशासन का लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर पुनर्गठन किया जाय ताकि वास्तविक अर्थों में अध्यापक और छात्रों के बीच उचित भावना पनप सके एवं इस प्रकार नीचे से ऊपर तक विचारों का आदान प्रदान सम्भव हो सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाये जाने चाहिएँ

(i) विश्वविद्यालय के उन विभागों को जो शैक्षिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, उन्हें प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियाँ काफी मात्रा में प्रत्यायोजित की जानी चाहिए। प्रत्येक विभाग की विभागाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक अलग व्यवस्था-समिति हो, जिसके सभी अध्यापक, कुछ रीडर्स तथा अध्यापक वर्ग द्वारा निर्वाचित कुछ व्याख्याता सदस्य हों। प्रत्येक उपसत्र में इसकी बैठक कम से कम एक बार अवश्य हो ताकि विभाग के शैक्षिक कार्यक्रमों, प्रयोगशालाओं तथा पुस्तकालय की आवश्यकताओं, कक्षाओं तथा अन्य सम्बन्धित कार्यों के प्रत्यायोजन आदि पर विचार विमर्श किया जा सके। इसकी कार्यवाही सभाय तथा साहित्यिक परिषद् के सदस्यों को प्रसारित की जाय। इसके लिए प्रत्येक विभाग को सचिविक कार्य सम्बन्धी पर्याप्त सहायता देनी होगी। जहाँ विज्ञान विभाग बड़े हों वहाँ विभागाध्यक्ष की सहायतार्थ प्राध्यापक तथा रीडर्स में से हो कोई एक उप विभागाध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जाय। विश्वविद्यालय कार्य परिषद् की अनुमति से विभागाध्यक्ष उपविभागाध्यक्ष को कुछ निर्धारित कार्य सौंप दें।

(ii) यह आवश्यक है कि महाविद्यालयों की स्वाधीनता तथा स्वतन्त्रता को स्वीकृति प्रदान की जाय तथा बचाव की दृष्टि से उन्हें एक निश्चित सीमा के भीतर भीतर इस तरह अधिक स्वतन्त्रता दी जाय कि उनका उपयोग मनमाने या स्वाधीन संस्थाओं के निर्माण में किया जा सके।

(iii) विश्वविद्यालय को एक एक संगठित समुदाय समझा जाना चाहिए, जिसमें अध्यापक वरिष्ठ विद्यार्थी हैं और स्वयं कनिष्ठ विद्यार्थी तथा प्रशासन उन दोनों का सुविधाओं के लिए है। अध्यापक छात्र और प्रशासन के बीच में कोई शासन वाले सभी प्रश्नों में रखा जाना चाहिए। प्रत्येक विभाग और प्रत्येक महाविद्यालय में विचार विमर्श और जहाँ कहीं सम्भव हो इनकी सामान्य समस्याओं तथा कठिनाइयों के निराकरण हेतु अध्यापकों तथा छात्रों

की संयुक्त समितियाँ बनायी जानी चाहिए। उपकुलपति अथवा प्रधानाचार्य, जो भी संस्था के अध्यक्ष हों, वे इन समितियों के कार्यों से पूर्णतः अवगत रहें। संस्थाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक और केन्द्रीय समिति हो जिसके सदस्य अध्यापक वर्ग तथा छात्रों के प्रतिनिधि हों। यदि इस प्रकार की कार्य व्यवस्था ठीक तरह से चलने लगती है तो कम से कम बहुत बड़ी संख्या में ऐसी छोटी घटनाओं में हेतु हो जाने वाली उन समस्याओं का निराकरण तो हो जायगा, जो उचित अवसर पर ध्यान न दिये जाने के कारण कटुता उत्पन्न करती हैं और जो कालान्तर में बहुधा अनुशासन के लिए भयंकर खतरा साबित हो सकती हैं। इससे अध्यापक तथा छात्रों के बीच नये अच्छे सम्बन्ध स्थापित होंगे एवं नया विश्वास पनपेगा। विश्वविद्यालय प्रशासन में भाग लेने के लिए छात्रों को उत्साहित करने तथा विश्वविद्यालय के दैनिक कार्य में उन्हें अपने उत्तरदायित्व को महसूस कराने के लिए छात्रों (अधिस्नातक छात्र भी) के प्रतिनिधियों को साहित्यिक परिषद् तथा विश्वविद्यालय न्यायालय से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।

13.1 विश्वविद्यालय के लिए कानून

इस प्रतिवेदन में तथा आदर्श विधान के प्रतिवेदन (Report of the 'Model Act') में विश्वविद्यालयों को सुदृढ़ बनाने तथा उनके प्रशासन का पुनर्गठन करने के लिए जो सुझाव दिये गये हैं उनको प्रभावशाली रूप से कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है कि भारत में विश्वविद्यालयों के निमित्त वर्तमान कानून का यथाशीघ्र पुनर्विलोकन किया जाय तथा उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन किये जाएँ। इस दिशा में शिक्षा मन्त्रालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को पहल करनी चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा मन्त्रालय राज्य सरकार तथा सम्बन्धित विश्वविद्यालयों के साथ विचार विमर्श करने के लिए कोई उपयुक्त व्यवस्था ईजाद की जानी चाहिए। विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कोई भी नया कानून विचार विमर्श के बाद ही प्रस्तावित किया जाना चाहिए।

13.2 प्रजातान्त्रिक की लहरें बहुत अधिक सीमा तक उत्पन्न हो गयी हैं तथा विश्वविद्यालयों के विरुद्ध न्यायालयों में जो मुकदमे पेश किये गये हैं उनके कारण जनता की नजरों में विश्वविद्यालयों का चित्र बहुधा दूषित हुआ है। यह ठीक है कि नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा होनी चाहिए लेकिन यह भी आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता बनी रहे और उनका सम्मान निरन्तर बढ़ता रहे। किन्तु यह आवश्यक है कि नागरिक

स्थापनाओं तथा मुकदमों के शीघ्र निपटारे के लिए उचित परम्पराएँ विकसित की जाएँ। अतएव चाहें तो भारत सरकार सर्वोच्च न्यायालय से निवेदन करे कि वह उन प्रवृत्तियों का पुनर्विलोकन करें जो विश्वविद्यालयों तथा शैक्षिक संस्थाओं से सम्बन्धित मामलों पर दिये गये न्यायालयों के निर्णयों में स्पष्ट दृष्टिगोचर हैं तथा न्यायालय इस बात की सम्भावना पर भी विचार करें कि क्या कोई ऐसी उचित नीति निर्धारित की जा सकती है जिससे कि विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता बनी रहने में तथा उच्च शिक्षा के उचित विकास में सहयोग मिलता रहे।

136 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

इस समय शिक्षा का जो ढाँचा है, उसके अन्तर्गत उच्च शिक्षा कई खण्डों में विभक्त है उनका आपस में न तो कोई सम्बन्ध ही है और न उनमें किसी प्रकार का आदान प्रदान हो। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग लगभग 60 विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित है तथा उनके विकास के लिए अपने पास उपलब्ध राशि से उनकी सहायता करता है जो राशि उसे भारत सरकार से इसके लिए प्राप्त हुई है। इसके अलावा कृषि विश्वविद्यालय हैं जो अमरीकी भूमि अनुदान महाविद्यालय सम्बन्धी सिद्धान्त से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इस सिद्धान्त ने गत शताब्दी में अमरीकी व्यावसायिक शिक्षा तथा कृषि उत्पादन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। कृषि शिक्षा विस्तार सेवाएँ तथा शोधकार्य को संयुक्त कर देने पर बल देना इन कृषि विश्वविद्यालयों की मुख्य विशेषता है। इन विश्वविद्यालयों ने कृषि शिक्षा तथा शोध के विकास की सहायतार्थ अपने स्वयं के प्राकृतिक एव सामाजिक विज्ञानों के विभाग भी खोल लिये हैं। खड़कपुर, कानपुर, दिल्ली, मद्रास आदि स्थानों पर तकनीकी संस्थान भी हैं जो संसद के कानून के अनुसार 'राष्ट्रीय महत्त्व का संस्थान' हैं तथा जिनको उपाधि वितरण का अधिकार भी प्राप्त है। कृषि विश्वविद्यालयों तथा औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों को क्रमशः कृषि मन्त्रालय तथा शिक्षा मन्त्रालय द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से नहीं अपितु सीधे ही आर्थिक सहायता प्रदान कर दी जाती है। चिकित्सा शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता स्वास्थ्य मन्त्रालय प्रदान करता है। यह भी कहा जाना चाहिए कि विश्वविद्यालयों पर स्नातक शिक्षा का उत्तरदायित्व भी सीमित ही है। इस प्रकार भारत में सम्पर्क बनाए रखने के प्रभावशाली प्रयासों के अभाव में दरार-ग्रस्त शिक्षा व्यवस्था हमारे उच्च शिक्षा के ढाँचे की एक बहुत बड़ी कमजोरी है।

137 वांछनीय है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उच्च शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। इस व्यावसायिक पक्ष से सम्बन्धित तथा उसकी समस्त समस्याओं के निराकरण में पर्याप्त रूप से सक्षम होना चाहिए। यह कई कारणों से आवश्यक है और उनमें से मुख्य कारण यह है कि आज के विश्व में कोई भी विधा सम्पूर्ण रूप में विकसित नहीं हो सकता, यदि वह शैक्षिक जीवन की मुख्यधारा से अलग है। कृषि तकनीकी तथा चिकित्सा विज्ञान एवं शिक्षण तभी सम्पन्न हो पायेंगे जबकि वे इस विस्तृत धारा से जुड़े हुए हों तथा वे एक दूसरे की समस्याओं तथा आवश्यकताओं से सम्बन्धित भी हों। शिक्षण के क्षेत्र में तो इसका सर्वाधिक गाढ़ा सम्बन्ध है ही, अनुसंधान के क्षेत्र में भी इस वस्तु को अधिक विस्तृत रूप में प्रयुक्त करना होगा। भविष्य में वास्तविक तथा आरम्भ यहीं से हो पायेगा जहाँ विभिन्न विधाएँ आपस में मिलती हैं। इस सन्दर्भ में यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि उक्त मान्यता विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विधेयक की धाराओं के अनुरूप ही है जिनकी रचना ही इस तरह से की गई है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा के सभी क्षेत्रों में कार्य करे। अतः उच्च शिक्षा के निमित्त समन्वीय समिति की सिफारिश का अनुमोदन किया जाना आवश्यक है जिसमें यह कहा गया है कि सभी प्रकार की उच्च शिक्षा को एक सम्पूर्ण इकाई माना जाना चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा से सर्वथा पृथक नहीं किया जा सकता और यह आवश्यक है कि कृषि इन्जीनियरिंग तथा चिकित्सा आदि से युक्त सभी प्रकार की उच्च शिक्षा, उच्च शिक्षा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्यक्षेत्र का मुख्य अंग हो। यही वह अन्तिम दिशा है जिस तरफ हम बढ़ना चाहिए।

138 यदि कुछ कारणों से अलग तरह का कदम न उठाया जा सके तो यह चाहिए कि कृषि इन्जीनियरिंग तथा चिकित्सा शिक्षा के निमित्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह के पृथक संगठनों का निर्माण किया जाना चाहिए तथा उनमें आपस में प्रभावपूर्ण सामंजस्य स्थापित करने के लिए किसी नयी व्यवस्था को जन्म दिया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह के संगठन कानून के माध्यम से स्थापित किये जायें। यह आवश्यक नहीं है तथा इन्हें स्वायत्तता प्राप्त संगठनों के रूप में स्थापित करने पर भी लक्ष्यों की पूर्ति की जा सकती है। ये संगठन पूर्णतः क्षेत्र के विशेषज्ञ कार्यकर्ताओं तथा प्रशासकों द्वारा बनाए जाने चाहिए। ये इस प्रकार के होने चाहिए तथा सुनिश्चित रूप से होने चाहिए कि वे अपना विचार बिना डर के रख सकें तथा साथ का प्रतिनिधित्व कर सकें। इन संगठनों का प्रधान कोई शिक्षाविद् या अपने क्षेत्र

का कोई विख्यात वैज्ञानिक होना चाहिए। इन संगठनों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह ही कार्य करना चाहिए अर्थात सम्बन्धित मन्त्रालयों द्वारा उन्हें एक मुश्त आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। इन संगठनों को स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे इस राशि को विश्वविद्यालयों में उनकी आवश्यकताओं तथा विकास के कार्यक्रमों के अनुरूप वितरित कर सकें। सामंजस्य बनाए रखने हेतु यह वांछित है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह के उक्त संगठनों के कुछ सदस्य एक दूसरे में होने चाहिए। इसके अतिरिक्त कार्यक्रमों का पुनर्विलोकन करने तथा उनमें सामंजस्य बनाये रखने हेतु इन चारों संगठनों के अध्यक्ष समय-समय पर विचार विमर्श करते रहने चाहिए।

139 (अ) उच्च शिक्षा हेतु राष्ट्रीय संस्था या समिति ने यह विचार व्यक्त किया था कि पूर्णकालिक उपकुलपतियों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का सदस्य बनाना वांछित नहीं है। सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है तथा विश्वविद्यालय अनुदान विधेयक में आवश्यक परिवर्तन किये जा रहे हैं। यह कोई अच्छा प्रस्ताव नहीं है और न यह उचित ही है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उन प्रख्यात एवं विद्वान की सेवाओं का लाभ न मिल सके केवल इसलिए कि वह उपकुलपति भी है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सदस्य संख्या 12 से 15 के बीच की होनी चाहिए। इनमें से एक तिहाई से अधिक सरकारी अधिकारी नहीं होने चाहिए। कम से कम एक तिहाई सदस्य विश्वविद्यालय वर्ग से होने चाहिएं जिसमें कि उपकुलपतियों के भी शामिल होने की सम्भावनाओं को समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। शेष सदस्य विख्यात शिक्षाविद होने चाहिए। अधिक संख्या में लोग इससे सम्बन्धित हो सकें इसके लिए यह किया जा सकता है कि इसके सदस्यों की वर्तमान सदस्यता अवधि को तीन वर्ष कर दिया जाए तथा दो बार से अधिक कोई व्यक्ति इसका सदस्य न रह सके।

139 (आ) आयोग के समक्ष उपस्थित समस्याओं की विशालता तथा महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि उसे बहुत बड़ी मात्रा में धनोपलब्धि करायी जाए ताकि यह उनका प्रभावपूर्ण तरीके से निर्वाह कर सके। आयोग ने जिन विकास योजनाओं का अध्ययन किया है और इस प्रतिवेदन में जिन योजनाओं को सुझाया गया है उनको दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट है कि चतुर्थ योजना में जो आवंटन किया गया है वह विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की आधारभूत विकास कार्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है। अतएव वर्तमान आवंटित राशि में बड़ी अधिक अभिवृद्धि करनी होगी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को निम्नलिखित कार्यों के लिए तो मुख्य रूप से अधिक धन की आवश्यकता होगी ही

—उन्नत अध्ययन के केन्द्रों तथा मुख्य विश्वविद्यालयों का विकास,
—कुछ चुनिन्दा विश्वविद्यालयों में शिक्षापीठ का विकास
—स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसंधान का विकास,
—राज्यों में स्थित विश्वविद्यालयों हेतु अनुरक्षण अनुदान की व्यवस्था
—केन्द्रीय जांच संगठन की स्थापना और
—आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्य का विकास।

140 इस प्रतिवेदन में की गयी सिफारिशों के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विधेयक 1956 का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए तथा उसमें वांछित संशोधन किये जाने चाहिए। इस नये विधेयक को अन्तिम रूप देने से पहले राज्य सरकारों से विचार विमर्श कर लिया जाना भी वांछित है।

141 विज्ञान एवं तकनीकी

विज्ञान के विकास के साथ-साथ तकनीकी ज्ञान में भी प्रगति होती है परिणामस्वरूप उत्पादन अधिक होने लगता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि केवल शिक्षा एवं अनुसंधान में पैसा लगा देने मात्र से ही कोई देश स्वतः ही सम्पन्न हो जायगा। तथ्य यह है कि इसके प्रतिकूल भी घटित हो सकता है। विज्ञान शिक्षा तथा उचित प्रकार के अनुसंधान के अन्तः सम्बन्धों का तात्पर्य यह है कि यदि उन्हें राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवस्थित किया जाय तो उत्पादन में वृद्धि होगी। अधिक उत्पादन के परिणामस्वरूप विज्ञान एवं ज्ञान के लिए और अधिक साधन एवं स्रोत उपलब्ध होने लगेंगे और इस प्रकार विज्ञान, तकनीकी ज्ञान तथा उत्पादकता में अभिवृद्धि होगी। अतएव विज्ञान शिक्षा को गुणात्मक रूप में लागू करना तथा कृषि एवं उद्योग के विकास के निमित्त वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहन देना शैक्षिक पुनर्गठन का मुख्य कार्यक्रम होगा। ऐसे प्रभावशाली एवं दूरदर्शी प्रयत्न सुस्पष्ट किये जाने चाहियें कि देश में उत्तम निपुण व्यक्तियों को कृषि विज्ञानों में अनुसंधान तथा उन्नत अध्ययन के लिए आकर्षित किया जा सके।

142 विज्ञान शिक्षा

तीव्रगति से वर्धमान माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा एवं शोध तथा उद्योग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आगामी दशकों में विज्ञान एवं गणित विषयों में स्नातकोत्तर स्तर पर प्रवेशार्थियों की संख्या में कई गुणा

वृद्धि करनी होगी। विभिन्न राज्यों में प्राप्त आर्थिक विकास की क्षमता के अनुरूप विज्ञान शिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान के विकास को सम्बद्ध करने तथा विज्ञान के विकास के दृष्टिकोण में वर्तमान क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने की भी परम आवश्यकता है।

143 विज्ञान एवं गणित के कुछ उच्च अध्ययन केन्द्रों का विकास किया जाना भी आवश्यक है। इनका अध्यापकवर्ग सर्वश्रेष्ठ एवं योग्य होना चाहिए और जहाँ कहीं सम्भव हो उसमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यक्ति सम्मिलित किये जाने चाहिए। दो या तीन वर्ष के लिए अतिथि अध्यापकों को निश्चित अनुबन्ध के आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिए। ऐसे अतिथि अध्यापकों की सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को एक अखिल भारतीय समिति का गठन करना चाहिए। इस समय विदेशों में काम कर रहे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय वैज्ञानिकों तथा सुविख्यात विदेशी वैज्ञानिकों को इस योजना के अन्तर्गत आमन्त्रित किया जा सकता है।

144 अधिस्नातक तथा स्नातकोत्तर विज्ञान पाठ्यक्रमों में शीघ्र ही आमूल चूल परिवर्तन किये जाने की भी आवश्यकता है। व्यावहारिक कार्य तथा जीव विज्ञान एवं भूमि विज्ञान सम्बन्धी परिवेशगत अध्ययन पर भी विशेष बल दिये जाने की आवश्यकता है। भौतिक विज्ञान के सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक पक्षों के अध्ययन में उचित सन्तुलन बनाये रखा जाना भी आवश्यक है।

145 प्रत्येक महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग की कार्यशालाएँ सुसज्जित होनी चाहिएँ। छात्रों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे कार्यशालाओं के यन्त्रों का उपयोग करना सीखें तथा प्रयोगशालाओं की आधारभूत तकनीक और सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त करें। कार्यशालाओं को कहीं अधिक सघनरूप से काम करना चाहिए जैसा कि अभी नहीं है। वांछनीय है कि उद्योगों में काम कर रहे व्यक्ति भी इनकी सायकालीन तथा पत्राचार पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत उपयोग कर सकें।

146 अन्तर्विषयी अध्ययन को भी सक्रिय रूप से प्रोत्साहित करना होगा। यदि जीव विज्ञानों के विभागों के अध्यापकवर्ग में भौतिक वैज्ञानिक (गणितज्ञ भी) और जीव विज्ञान में अधिक रुचि रखने वाले वैज्ञानिकों को विशेष रूप से सम्मिलित किया जाय तो यह बहुत ही लाभप्रद रहेगा। इसी तरह भौतिक विज्ञान तथा गणित विभाग अवश्य ही लाभान्वित होंगे, यदि अनुप्रयोगनिष्ठ इंजीनियरों के सम्पर्क में रहें।

147 वैज्ञानिक अनुसंधान

वैज्ञानिक अनुसंधान तथा उसके विकास की प्रगति की दिशा में भी अविलम्ब प्रयत्न किए जाने की आवश्यकता है।

148 विश्वविद्यालयों में विज्ञान शिक्षा तथा वैज्ञानिक अनुसंधान को सुनियोजित रूप से सहयोग तथा प्रोत्साहन दिया जाना हमारी राष्ट्रीय नीति का मूलभूत तत्त्व होना चाहिए। सृजनशील वैज्ञानिक तथा इन्जीनियर किसी देश की बहुमूल्य तथा दुर्लभ थाती होते हैं। उन्हें विश्वविद्यालयों में स्थान दिया जाना चाहिए जहाँ कि उनके गुणात्मक प्रभाव का सामान्यतः अधिकाधिक लाभ उठाया जा सकता है। शोध-कार्य के निमित्त अनुदान की राशि में अभिवृद्धि की जानी चाहिए तथा दशाब्दी के अन्त तक किसी विश्वविद्यालय में होने वाले कुल खर्च का लगभग चौथाई भाग अनुसंधान पर खर्च किया जाना चाहिए।

149 शुद्ध (मूल आधारभूत) अनुसंधान को सामान्यतः महत्त्व देने वाले विश्वविद्यालयों को भी व्यावहारिक अनुसंधान एवं विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी तरह तकनीकी संस्थाएँ भी शुद्ध अनुसंधान कार्य को कम महत्त्व न दें यद्यपि वे भी व्यावहारिक एवं औद्योगिक अनुसंधान-कार्य पर विशेष ध्यान दें।

150 प्रवृत्ति यह रही है कि यदि कोई प्रतिरोध न लगाया जाय तो अनुसंधान कार्य 'शुद्ध और अधिक शुद्ध' होता जाता है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए व्यावहारिक अनुसंधान के महत्त्व की दृष्टि से इस प्रकार की प्रवृत्ति पर रोक लगाया जाना आवश्यक है। इसका आवश्यक रूप से अर्थ यह है कि विश्वविद्यालयों तथा इन्जीनियरिंग संस्थाओं में चल रहे अनुसंधान कार्य में केवल इन्जीनियर ही न हों अपितु शुद्ध वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ताओं का सदुपयोग करने की दृष्टि से घनिष्ठ सहयोग सम्बन्ध बने रहें। विश्वविद्यालयों, इन्जीनियरिंग संस्थाओं तथा उद्योगों के कर्मचारियों द्वारा आपस में विचार विमर्श तथा सम्पर्क स्थापित करके औद्योगिक अनुसंधान की समस्याओं का सामूहिक रूप से हल खोज निकालने की भी आवश्यकता है। विश्वविद्यालयों तथा उद्योगों में कार्यरत कर्मचारियों का आदान प्रदान हो सकता है और होना भी चाहिए।

औद्योगिक प्रतिष्ठानों में शिक्षा संस्थाओं के केवल सलाहकार व परामर्शदाताओं के रूप में काम करें अपितु उन्हें उनका निदेशक भी बनाया जा सकता है। परिणामतः कई उद्योग प्रतिष्ठानों ने विश्वविद्यालय विभागों के सहयोग से अनुसंधान संस्थाओं की स्थापना कर रखी है और कई योजनाएं

पर वे एक साथ काम कर रहे हैं। जहाँ भी सम्भव हो और सुविधाएँ उपलब्ध हों तो भारतवर्ष में भी इस प्रकार के प्रयत्न किए जा सकते हैं।

1.1 भारत में ऐसी बहुत सी संस्थाएँ हैं जो विश्वविद्यालय की तरह का अनुसंधान-कार्य कार्यान्वित करती हैं। लेकिन जिनका कार्यक्षेत्र विश्वविद्यालय के बाहर हो है। प्रयत्न किए जाने चाहिए कि वे विश्वविद्यालयों में काम करें अथवा कम से कम इतना तो हो ही सकता है कि वे विश्वविद्यालयों से घनिष्ठ सम्पर्क रखते हुए अपने कार्य का भाग बढ़ाते रहें।

1.2 राष्ट्रीय विज्ञान नीति

सर्वोच्च स्तर के सरकारी अधिकारियों के लिए यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि वे वैज्ञानिक विषयों पर यथा सम्भव निष्पक्ष तथा वस्तुनिष्ठ सम्मति प्राप्त कर सकने के प्रति आश्वस्त हो सकें। इसके लिये एक ऐसे सलाहकार मंडल का निर्माण किया जाना आवश्यक है जिसमें वैज्ञानिक अनुसंधान से सम्बन्धित प्रमुख अभिकरणों के प्रधानों के अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति भी सदस्य होने चाहिए जो अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठावान तथा उसमें ख्याति प्राप्त होने के साथ साथ स्वयं के प्रति विश्वास उत्पन्न करने वाले भी हों। 30 वर्ष की आयुवाले कुछ प्रमुख युवक वैज्ञानिक भी इसके सदस्य होने चाहिएँ। इन व्यक्तियों की संख्या अभिकरणों के प्रधानों की संख्या से कम नहीं होनी चाहिए। विश्वविद्यालयों, सरकारी अथवा गैर-सरकारी अनुसंधान प्रतिष्ठानों, उद्योगों तथा सामान्य जनता में से इन लोगों का चयन किया जा सकता है। इस सलाहकार मण्डल में केवल वैज्ञानिक तथा तकनीकज्ञ ही नहीं अपितु अर्थशास्त्री एवं सामाजिक विज्ञानवेत्ताओं के अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति भी होने चाहिएँ जिन्हें उद्योग एवं व्यवस्था सम्बन्धी अनुभव प्राप्त है। मन्त्रालय की वैज्ञानिक सलाहकार समिति का उसके आधार पर पुनर्गठन करने के साथ-साथ उसे एक प्रभावशाली सचिवालय उपलब्ध कराया जाना चाहिए तथा इस कार्य को क्रियान्वित करने में सक्षम व्यक्तियों को इसके साथ सम्बद्ध किया जाना चाहिए। समिति ऐसी स्थिति में होनी चाहिए कि वह देश की तथा विश्वविद्यालयों की मुख्य वैज्ञानिक आवश्यकताओं का अनुमान लगा सके तथा सरकार को वैज्ञानिक नीति तथा विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध मात्रा के सम्बन्ध में सम्मति दे सके। राष्ट्रीय अनुसंधान नीति की स्थिति का पुनर्विलोकन भी इस समिति को निरन्तर करते रहना चाहिए।

1.3 कृषि विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय

प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना

जानी चाहिए। ऐसा करने के लिए वर्तमान विश्वविद्यालयों में से किसी विश्वविद्यालय को कृषि विश्वविद्यालय में रूपान्तरित करने की सम्भावना को ध्यान में रखना चाहिए।

इस कृषि विश्वविद्यालय को कृषि सम्बन्धी परम्परागत विशेषताओं के चयन से अपना कार्य प्रारम्भ करके समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नेपथ्य पाठ्यक्रमों का विस्तार निरन्तर करते रहना चाहिए। स्नातकोत्तर या विशेषज्ञ स्तर तक उपेक्षित क्षेत्रों की शिक्षा के लिए आवश्यक पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराना इसके मुख्य कार्यों में से प्रमुख कार्य होना चाहिए। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस स्तर पर सर्वोच्च स्तर को भी बनाये रखना होगा।

कृषि विश्वविद्यालयों तथा राज्य कृषि विभागों के दायित्वों में स्पष्ट रेखांकन किया जाना चाहिए। कृषि विश्वविद्यालय अनुसंधान, शिक्षा तथा प्रसार कार्यक्रमों को सम्पन्न करें।

154 प्रयोग के तौर पर यद्यपि कुछ छूट दी जानी चाहिए तथापि यह अनिवार्य है कि सभी कृषि विश्वविद्यालयों को किन्हीं एक से महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को मानकर चलना चाहिए जैसे एक प्रांगण विश्वविद्यालय अर्थात् महाविद्यालय इन विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध न हों। निपुण छात्रों को आकर्षित करने के लिए छात्रवृत्तियों की उदार व्यवस्था (20% छात्रों को छात्रवृत्तियाँ) पर्याप्त आकार के सुव्यवस्थित फार्म तथा कर्मचारी वर्ग का वेतन अन्य विश्वविद्यालयों के कर्मचारियों के वेतन के समान होना चाहिए।

155—कृषि विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त अन्य विश्वविद्यालय जहाँ कि कृषि महाविद्यालय अथवा कृषि संकाय हैं तथा जो कृषि अध्ययन को बढ़ावा देना चाहते हैं उन्हें उदार सहायता दी जानी चाहिए तथा कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित उनके द्वारा कार्यों का कृषि विश्वविद्यालयों के कार्यों से पर्याप्त सामंजस्य होना चाहिए।

156 कृषि विश्वविद्यालयों तथा औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में अधिक सम्बन्ध विकसित किये जाने चाहिए। इस सम्बन्ध बनाने के लिए अन्य कार्यक्रमों के अलावा छात्र और कर्मचारी-वर्ग का आदान प्रदान किया जा सकता है अन्वेषण एवं अनुसंधान के समान कार्यक्रम अपनाये जा सकते हैं। एक साथ ही औद्योगिक शिक्षण प्रतिष्ठानों तथा कुछ मुख्य विश्वविद्यालयों में कृषि विभाग स्थापित करने की सम्भावनाओं को भी मालूम किया जाना चाहिए।

157 ऊपर सुझाये गये कृषि विश्वविद्यालयों के प्रस्तावित विस्तार के लिए नये कृषि महाविद्यालय नहीं खोले जाने चाहिए बल्कि वर्तमान कृषि महा

विद्यालयों में स्तर सम्बन्धी सुधार लाने के लिए एकाग्र प्रयत्न किये जाने चाहिए। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आइ सी ए आर) तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को संयुक्त रूप से इन कृषि महाविद्यालयों का हर ५ वें वर्ष निरीक्षण करना चाहिए तथा ऐसे महाविद्यालय जिनका कि पर्याप्त ऊंचा स्तर नहीं है, उनका उच्च तकनीकी स्तर की शिक्षा देनेवाली संस्थाओं में रूपान्तरण किया जा सकता है या फिर उन्हें असम्बद्ध किया जा सकता है।

158 इंजीनियरों की शिक्षा

गत दस वर्षों में इंजीनियरों के प्रशिक्षण में पर्याप्त प्रगति हुई है। इन चार दिशाओं में और भी प्रगति वांछित है (1) उद्योगों से अधिक घनिष्ठ सम्पर्क (2) इंजीनियरिंग संस्थाओं में व्यावहारिक कार्य पर विशेष कर देश की दृष्टि से गुणात्मक सुधार, (3) वर्तमान संस्थाओं का गठन एवं एकीकरण और (4) इंजीनियरिंग संस्थाओं मुख्यतः औद्योगिक प्रशिक्षण प्रतिष्ठानों (आई आई टी) में अधिकाधिक समवरण के आधार पर प्रवेश के अवसर प्रदान करना।

159 प्रशिक्षण योजनाएँ आरम्भ करने के निमित्त उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण सुविधाएं उत्पन्न करने के लिए औद्योगिक प्रतिष्ठानों को उपदान देने की केन्द्रीय योजना का भी आरम्भ किया जा सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र से सम्बन्धित उद्योगों को इस कार्य के लिए बजट में पृथक से प्रावधान किया जा सकता है। जो उद्योग अथवा उद्योग संगठन प्रशिक्षण सुविधाएँ देते हैं वहाँ उचित एवं योग्य प्रशिक्षकों को नियुक्त किया जाना चाहिए। औद्योगिक एवं शैक्षिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण कार्य का पुनर्विलोकन करने के लिए नियमित रूप से मिलते रहना चाहिए।

उद्योग सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने की दिशा में इंजीनियरों को अनुसंधान कार्य का अधिकाधिक अवसर दिया जाना चाहिए तथा उद्योगों द्वारा संचालित स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम सम्बन्धी अनुसंधान कार्य को जहाँ आवश्यक हो कई वर्षों की अवधि में विभिन्न सत्रों में विभाजित किया जाना चाहिए ताकि अधिकाधिक संख्या में लोग अनुसंधान कार्य में सफलता प्राप्त कर सकें। उद्योगों में डिजाइन इत्यादि का कार्य तथा व्यावसायिक विकास कार्य करने के आधार पर उन्हें डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने की सुविधा भी दी जानी चाहिए।

160 निम्न बिन्दुओं के आधार पर इंजीनियरों की शिक्षा में कहीं अधिक गुणात्मक सुधार करना होगा

(1) आधारभूत विज्ञानों के शिक्षण को सुदृढ़ किया जाना चाहिए

ताकि हमारे इंजीनियरों में से मुख्यतः जो अनुसंधान विकास तथा तकनीकि कार्यों में काम कर रहे हैं, वे अधिकाधिक लाभ उठा सकें।

(ii) पाठ्यक्रम के तीसरे वर्ष में ही पूर्णकालिक छात्र के लिए व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने की सुविधा होनी चाहिए। उद्योगों के सहयोग से इन कार्यक्रमों का सावधानी से निर्माण किया जाना चाहिए तथा उनका उचित परिवीक्षण किया जाना चाहिए एवं इसे पाठ्यक्रम की समाप्ति के पूर्व ही पूरा किया जाना चाहिए।

जहाँ सम्भव हो मिश्रित पाठ्यक्रम आरम्भ किये जाने चाहिए। दोनों ही निर्धारित पाठ्यक्रमों तथा अवकाश अवधि में छात्र और अध्यापक मय नियत संस्थाओं में उपयोगार्थ उपकरणों पर शोध करने तथा उनकी डिजाइन बनाने के कार्य द्वारा कार्यशालाओं में किये जाने वाले अभ्यास को अधिकाधिक उत्साहपूर्ण बनाया जा सकता है। अभिकार्य (Project) के रूप में उद्योगों की उत्पादन सम्बन्धी समस्याएँ छात्रों को निराकरण हेतु सौंपी जा सकती हैं। अध्यापक तथा विश्वविद्यालय विभागों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे उद्योगों से सलाह मशविरा में तथा अवकाश के दिनों में उद्योगों में जाकर काम करें। ग्रीष्मकालीन विद्यालयों में अध्यापक तथा उद्योगों के बीच व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करने के अधिकाधिक अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने से पहले किसी उद्योग में एक वर्ष का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करना स्नातकों के लिए अनिवार्य होना चाहिए।

(iii) उद्योगों की आवश्यकता पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के इंजीनियर तथा तकनीशियनों के लिए डिप्लोमा व स्नातक पाठ्यक्रमों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु यह आवश्यक है कि इनके वर्तमान रूप में परिवर्तन किया जाय तथा आवश्यक तकनीकों के निर्माण हेतु वर्तमान एवं नई संस्थाओं में चलाये जाने वाले पाठ्यक्रमों को सम्पूर्ण रूप से नई दिशा दी जाय। उद्योगों की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जिस प्रकार के विशेषज्ञ प्राप्त करने की आवश्यकता हो उनके लिए विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित पाठ्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए तथा उनका निरन्तर पुनर्विचार भी किए जाते रहना चाहिए।

(iv) उद्योगों की आवश्यकताओं से विश्वविद्यालय तथा तकनीकी संस्थान परिचित हो सकें इसके लिए आवश्यक है कि उद्योगों द्वारा उनको आवश्यक क्षेत्र अनुसंधान कार्य निर्धारण (Research design) इंजीनियरों को सम्पर्क में लाने हेतु बनाया जाना चाहिए।

(५) विशेषज्ञ समितियों के सलाह मशविरे से पाठ्यक्रम में निरन्तर संशोधन होते रहना चाहिए ताकि किसी भी प्रकार की जड़ एकरूपता से बचा जा सके। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की अवधि के सम्बन्ध में एकरूपता लाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इनकी अवधि चुनिन्दा क्षेत्रों की आवश्यकतानुरूप एक से दो वर्षों के बीच हो सकती है।

161 निकट भविष्य में नयी संस्थाओं की स्थापना अथवा बड़े पैमाने पर उनके विकास पर नहीं बल्कि (क) वर्तमान संस्थाओं को अधिकतम सीमा तक बढ़ाने, (ख) अपव्यय की दर को समाप्त करने तथा शिक्षण में गुणात्मक सुधार करने, और (ग) मेधावी व्यक्तियों के लिए अंशकालीन पाठ्यक्रमों सम्बन्धी व्यवस्था करने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

162 इंजीनियरिंग महाविद्यालयों तथा मुख्यतः आई० आई० टीज में प्रवेश सम्बन्धी अवसरों के समकरण को नियोजित करने की आवश्यकता है। प्रवेश का आधार केवल अंक प्राप्ति को ही नहीं मानकर ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए कि प्रवेशार्थियों को प्रायोगिक तौर पर एक से अधिक क्षेत्रों में से चुनाव करने की सुविधा हो तथा चयनित छात्रों की योग्यता को उनकी वास्तविक उपलब्धि की रोशनी में तुलनात्मक दृष्टि से आंका जाना चाहिए।

163 शैक्षिक ढांचे का पुनर्गठन

गत वर्षों में देश के प्रत्येक भाग में शैक्षिक ढांचे के पुनर्गठन तथा विद्यालय व महाविद्यालय की कक्षाओं में अपनाये जाने वाली समान पद्धति के विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। गुणात्मक सुधार सम्बन्धी जो क्रान्तिकारी सुझाव दिये गये हैं उनको देखते हुए इन बातों को कम ही प्राथमिकता प्राप्त है। फिर भी शैक्षिक ढांचे में कुछ परिवर्तन निःसन्देह लाभदायक होंगे, यदि इन्हें निकट भविष्य में अपनाये जाने वाले प्रस्तावित शैक्षिक पुनर्गठन के कार्यक्रम के अविच्छिन्न अंग के रूप में कार्यान्वित किया जाए।

164 नये शैक्षिक ढांचे का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए

—एक से तीन वर्ष की पूर्व विद्यालय शिक्षा,

—सर्वजनीन सामान्य शिक्षा जिसे इस तरह विभक्त किया जा सकता है: प्राथमिक शिक्षा 7 या 8 वर्ष (निम्न प्राथमिक स्तर चार या पांच वर्ष उच्च प्राथमिक तीन या दो वर्ष) तथा निम्न माध्यमिक स्तर की शिक्षा तीन या दो वर्ष अथवा एक से तीन वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा (व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश की शिक्षा कुल संख्या की 20% हो)

—उच्चतर माध्यमिक स्तर का सामान्य शिक्षा दो वर्ष अथवा एक में तीन वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा और

—उच्च शिक्षा स्तर—तीन वर्ष या अधिक प्रथम स्नातक उपाधि के लिए तथा दूसरी अथवा अनुसंधान उपाधियों के लिए विभिन्न अवधि के पाठ्यक्रम।

पहली कक्षा में प्रवेश की आयु सामान्यतः छः वर्ष से कम नहीं होना चाहिए। अन्य कक्षाओं में प्रवेश आयु सीमा निर्धारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

165 शैक्षिक ढाँचे के पुनर्गठन के इस कार्यक्रम को तीन ओर से आरम्भ करना होगा। प्रथम है देश के सभी हिस्सों में दसवर्षीय विद्यालय व्यवस्था आरम्भ करना। इस सम्बन्ध में केवल मैसूर तथा उत्तर प्रदेश में कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी। जिन राज्यों में (आन्ध्रप्रदेश असम नागालैंड बिहार गुजरात मद्रास महाराष्ट्र और उड़ीसा) इस समय विद्यालय त्याग प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की अवधि 11 या 12 वर्ष है वहाँ पाठ्यक्रम को सुव्यवस्थित करना होगा ताकि नये ढाँचे को अपनाया जा सके और इस प्रकार विद्यालय शिक्षा की अवधि दस वर्ष हो जाय। शेष राज्यों में जहाँ कि माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अन्तर्गत उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पद्धति अधिक प्रचलन में है वहाँ निम्न तरीके अपनाने होंगे

(i) इसके लिए प्रत्येक माध्यमिक स्तर के विद्यालय को उच्चतर माध्यमिक स्तर का विद्यालय बनाने की आवश्यकता नहीं है। केवल अधिक विकास तथा अधिक कुशल उच्च विद्यालयों—कुल संख्या का लगभग एक चौथाई—का उन्नत किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से सभी वर्तमान उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के स्तर का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए तथा जो उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय का रहने के योग्य न हों उन्हें उच्च विद्यालय बना दिया जाना चाहिए।

(ii) धाराबद्ध पद्धति (Streaming) का त्याग किया जाना चाहिए तथा नियमतः कक्षा आठ से कोई सुगठित पाठ्यक्रम प्रारम्भ नहीं किया जाना चाहिए। कक्षा 9 व 10 प्रथम स्तरीय सामान्य शिक्षा तथा कक्षा 11 उच्चतर माध्यमिक स्तर का अंग होना चाहिए। कक्षा 11 में विभिन्न विषयों में विशेषज्ञता ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था की जाना चाहिए।

(iii) कक्षा दस के बाद एक बाह्य परीक्षा होना चाहिए और दूसरा बाह्य परीक्षा कक्षा 11 के बाद। 10 वर्षीय उच्च विद्यालयों के विद्यार्थियों को केवल एक बाह्य परीक्षा में बैठना होगा। लेकिन उच्चतर माध्यमिक

विद्यालयों व छात्रों के लिए यह आवश्यक नहीं होना चाहिए। वे चाहे तो कक्षा 11 के बाद एक अन्तिम परीक्षा में दें अथवा दो किस्तों में अर्थात् कक्षा 10 और कक्षा 11 के बाद।

166 इस कार्यक्रम का दूसरा बिन्दु यह है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा का विकास निम्न प्रकार से किया जाय:

(i) उच्चतर माध्यमिक स्तर को विद्यालयी शिक्षा का अंग घोषित किया जाना चाहिए तथा प्रस्तावित राज्य विद्यालय शिक्षा बोर्ड के हाथों में इसका प्रशासनिक नियंत्रण सौंपा जाना चाहिए।

(ii) इस स्तर की शिक्षा फिलहाल अधिकांशतः महाविद्यालयों में और बहुत ही कम संख्या में कुछ चुने हुए विद्यालयों में आरम्भ की जानी चाहिए। अधिक से अधिक विद्यालयों को उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-स्तर तक उन्नत किये जाने तथा विश्वविद्यालयों और बड़े महाविद्यालयों, मुख्यतः स्नातकोत्तर महाविद्यालयों से इन उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं को समाप्त करने के प्रयत्न किये जाने चाहिएँ। अन्ततः केवल 20% माध्यमिक विद्यालयों तथा 30% महाविद्यालयों में ही उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो।

(iii) 10 से 20 वर्ष की अवधि के क्रमिक कार्यक्रम द्वारा इस स्तर की शिक्षा की अवधि समान रूप से दो वर्ष बढ़ानी होगी।

167 विश्वविद्यालय स्तर पर मुख्य समस्या उत्तरप्रदेश में है जहाँ कि कला, विज्ञान और वाणिज्य में प्रथम स्नातक उपाधि पाठ्यक्रम की अवधि तीन वर्ष करनी होगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी 15 से 20 वर्ष की अवधि में कोई क्रमिक कार्यक्रम अपनाना होगा।

168 इस पुनर्गठन के कार्य में स्तर उन्नत करने का लक्ष्य निरन्तर सामने बने रहना चाहिए। उदाहरण के लिए यह सम्भव होना चाहिए कि अच्छे छात्रों का प्रवेश देने तथा उपलब्ध सुविधाओं के अधिकाधिक समुचित उपयोग करने से दस वर्षीय विद्यालयी शिक्षा की समाप्ति पर ऐसा स्तर प्राप्त किया जा सके जो कि वर्तमान में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 11 वर्षीय शिक्षा के उपरान्त प्राप्त किया जा रहा है। परिणामतः प्रथम स्नातक उपाधि की शिक्षा का स्तर उन्नत होगा, विशेषतः तब तो और भी जबकि उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा की अवधि समान रूप से दो वर्ष की हो जायेगी। वस्तुतः भविष्य की प्रथम स्नातक उपाधि का स्तर वह होना चाहिए जो वर्तमान में स्नातकोत्तर उपाधि का स्तर है ताकि छात्र-छात्र को अनुसंधान कार्य के प्रारम्भिक स्थल पर पहुँचा हुआ पायें। ऐसा होने पर हमारे यहाँ का स्तर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अनुरूप हो जायेगा, क्योंकि इस समय हमारे यहाँ कला

विज्ञान एवं वाणिज्य की स्नातकोत्तर उपाधि का स्तर सामान्यतः विदेशों के प्रमुख विश्वविद्यालयों के प्रथम स्नातक उपाधि के स्तर के समान है।

169 प्रौढ़ शिक्षा

निरक्षरता की समाप्ति तथा सभी क्षेत्रों में व सभी स्तर की शिक्षा के अन्तर्गत अंशकालिक तथा स्वकालिक शिक्षा के विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अंशकालिक तथा स्वकालिक शिक्षा का विकास केवल उन लोगों के लिए ही नहीं करना है जिन्होंने औपचारिक शिक्षा ग्रहण करना है बल्कि उन लोगों के लिए भी जो बिना कोई परीक्षा दिए अपने ज्ञान और अपनी कुशलता में वृद्धि करना चाहते हैं। महत्त्वपूर्ण आवश्यकता तो यह है कि कर्मचारियों को ऐसी शिक्षा उपलब्ध करायी जाए कि वे अपने ज्ञान और अपनी कुशलता में वृद्धि कर सकें, कि जीवन में नए क्षितिज प्राप्त कर सकें तथा अपने व्यवसाय में प्रगति कर सकें। पुस्तकालय सलाहकार समिति द्वारा दिए गये सुझावों के अनुरूप पुस्तकालय सम्बन्ध सुविधाओं में सुधार तथा उनका विस्तार करने की भी आवश्यकता है।

170 विश्वविद्यालयों तथा समाज के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध विकसित करने पर विशेष यत्न किया जाना चाहिए क्योंकि आधुनिक विश्व में समाज तथा विश्वविद्यालय का महत्त्वपूर्ण कार्य हो गया है। राष्ट्रीय सेवा कार्यक्रम पर भी अधिक बल दिया गया है। इसके विकास के लिए भी यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय और समाज में घनिष्ठ सम्पर्क हो। स्थानीय, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय समस्याओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करानेवाले अभिकरणों की तरह ही विश्वविद्यालयों को कार्य करना चाहिए ताकि सरकार अथवा अथवा निजी संगठन आवश्यकता पड़ने पर इन समस्याओं के सम्बन्ध में उनकी सम्मति प्राप्त कर सकें उनसे निर्देश ले सकें। इन विश्वविद्यालय द्वारा केवल परीक्षाओं के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु जीवन के हर क्षेत्र में कार्यरत व्यावसायिक कर्मचारियों की सतत शिक्षा के लिए भी पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रम बनाए तथा विकसित किए जाने चाहिएँ। जनता की सामान्य शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रम भी इस दृष्टि से बनाए जा सकते हैं कि जनसाधारण तथा बुद्धिजीवी-वर्ग के बीच दृष्टिकोण की एकता तथा आपसी निकट सम्पर्क बने। आज स्थिति यह है कि सामान्यजन-नेतृत्व-वर्ग का अधिकतर भाग उस शैक्षिक स्तर का है जो विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने योग्य ही नहीं है। किन्तु इस नेता-वर्ग के दृष्टिकोण अथवा अन्य प्रकार के दृष्टिकोण पर ही देश का भविष्य निर्भर करता है। यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय ऐसे विशिष्ट प्रसार-कार्यक्रम चलाएँ कि इस नेता वर्ग में राष्ट्र के विकास से सम्बन्धित नाजुक समस्याओं के

प्रति समझ उत्पन्न हो सके।

171 इन तथा ऐसे कार्यक्रमों की योजना बनाने, उन्हें कार्यान्वित करने तथा उनका मूल्यांकन करने के लिए विश्वविद्यालयों को पर्याप्त व्यवस्था उपलब्ध होना चाहिए। इसके लिए उपकुलपति की अध्यक्षता में एक प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जानी चाहिए जो नीति निर्धारण करे, कार्यक्रम बनाये तथा विश्वविद्यालयों के विभिन्न विभागों के साथ मिलकर उनको कार्यान्वित करे। बोर्ड द्वारा स्वीकृत कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए पर्याप्त कर्मचारी वृन्द की व्यवस्था भी होनी चाहिए। हम यह भी अनुभव करते हैं कि देश के कुछ विश्वविद्यालयों को प्रौढ़ शिक्षा के विभाग विकसित करने चाहिएँ। शिक्षकों तथा विशेषज्ञों को प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र का प्रशिक्षण देना, शिक्षा, समाज शास्त्र तथा मनोविज्ञान के विभागों के सहयोग से प्रौढ़ शिक्षा की समस्त समस्याओं के सम्बन्ध में अनुसंधानकार्य को कार्यान्वित करना, उसका निर्देशन करना इन विभागों का लक्ष्य होना चाहिए।

172 पूर्व प्राथमिक शिक्षा

पूर्व प्राथमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, लक्ष्य यह रहे कि 1966 तक इसमें 3 5 वर्ष के 5 प्रतिशत बालकों का प्रवेश किया जा सके। ऐसी शिक्षा के विकास हेतु कम खर्चीली पद्धतियों पर विशेष बल देने की आवश्यकता है, ये पद्धतियाँ चाहे मद्रास में चल रही पद्धति के अनुरूप हों चाहे प्राथमिक विद्यालयों से जुड़े हुए बाल केन्द्रों के रूप में हों।

राज्य को चाहिए कि वह जिला स्तर पर पूर्व प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए विकास केन्द्रों की स्थापना करे, पूर्व प्राथमिक अध्यापकों को प्रशिक्षित करे, शोध कार्यक्रम अपनाए तथा आवश्यक साहित्य तैयार करवाए। साधारणतः पूर्व प्राथमिक विद्यालयों का सचालन निजी प्रयत्नों के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए, चाहे तो राज्य उन्हें समकरण के आधार पर आर्थिक सहायता दे सकता है।

173 शैक्षिक भवन

विद्यालय भवनों की समस्या पर शीघ्र ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में अपनायी गयी नीति बहुधा असंतुष्ट रही है। यद्यपि वृक्षों की छाया में विद्यालय के आदर्श को व्यावहारिक रूप में अपनाए जाने के बहुधा प्रयत्न हुए हैं किन्तु इसके साथ-साथ भवन योजनाओं के निर्माण के अन्तर्गत मूल्यवान तथा ऐशो आराम सम्पन्न भवन को प्रमुखता प्राप्त करते रहे हैं। अधिक राशि जुटाने, निर्माण की लागत कम करने तथा

शालाओं में भवन निर्माण करने के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण तथ्यात्मक होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाये जाने का सुझाव है

(i) **अधिक मात्रा में आवंटन**—विद्यालय भवनों की वर्तमान असन्तोषजनक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि अपर्याप्त विद्यालय भवनों की न्यूनता की पूर्ति की जाय तथा नये प्रवेशार्थियों के लिए अतिरिक्त भवन बनाये जायें।

(ii) केन्द्रीय तथा राज्य बजट में विद्यालय भवनों के निर्माण हेतु आवंटित राशि में अभिवृद्धि की जानी चाहिए तथा अन्य सामाजिक साधनों का समकरण के आधार पर अधिकाधिक उपयोग किया जाना चाहिए। निजी विद्यालयों को भवन निर्माण हेतु ऋण तथा अनुदान राशि उदारता पूर्वक स्वीकृत की जानी चाहिए।

(iii) **कीमत में कमी**—विद्यालय भवन निर्माण की योजना तथा प्राप्त स्थान के उपयोग के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी को व्यावहारिक स्तर पर प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

(iv) भवन निर्माण में प्रयुक्त होनेवाली परम्परागत सामग्री के अभाव तथा उनकी बढ़ी हुई कीमतों की स्थिति में सुनिर्मित कच्चे निर्माणों को विद्यालय भवन व्यवस्था के रूप में स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।

(v) **ग्रामीण क्षेत्रों में भवन**—ग्रामीण क्षेत्रों में शाला भवन निर्माण हेतु स्थानीय प्रयत्नों तथा जनता उत्साह को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में शिक्षा मंत्रालय के न्यूक्लियस (Nucleus) पद्धति के सुझाव का सामान्यतः अनुगमन किया जाने की सिफारिश की जाती है।

(vi) **नगर क्षेत्रों में भवन**—इस क्षेत्र में बनने वाले भवनों में स्थानीय उपलब्ध सामग्री के उपयोग द्वारा भवन निर्माण समाप्ति पर की जाने वाली कुछ विशेष प्रकार की सजावट को छोड़ दी तथा कारीगरी की दृष्टि से कुछ निम्न श्रेणी के निर्मित भवनों के उपयोग द्वारा भवन निर्माण में होने वाले व्यय में कमी की जानी चाहिए। जहाँ कहीं सम्भव हो कच्चे अस्थायी ढाँचे खड़े किये जायें तथा निर्माण की विकसित तकनीक का पक्के भवन निर्माण में प्रयुक्त किया जाय।

(vii) **शीघ्र भवन निर्माण**—विद्यालय भवनों सम्बन्धी सुविधा की शीघ्र पूर्ति हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय वर्गों अथवा ग्राम पंचायतों का तथा नगर क्षेत्रों में नगरपालिकाओं तथा परिषदों का भवन निर्माण कार्य सौंपा जा सकता है।

(viii) विद्यालय भवन निर्माण कार्य का निरीक्षण करने तथा उसे निर्देशित करने हेतु प्रत्येक राज्य में सार्वजनिक निर्माण विभाग के अंतर्गत एक शक्षिक भवन विकास मण्डल की स्थापना की जानी चाहिए जो शिक्षा विभाग के निकट सम्पर्क में रहकर कार्य करेंगे । ये प्रस्तावित मण्डल उस क्षेत्र में होने वाले भवन निर्माण का स्तर सम्बन्धी विवरण तैयार करेंगे ताकि कारखाने में होने वाले उत्पादन की तरह आवश्यक उपकरणों को अधिक मात्रा में तैयार किया जा सके । राज्य मण्डलों के कार्यक्रमों में आवश्यक ताल मेल बनाये रखने हेतु इसी तरह केन्द्रीय स्तर पर एक भवन विकास मण्डल की स्थापना की जानी चाहिए ।

(ix) राजकीय भवनों के निर्माण में होने वाले विलम्ब की रोक थाम हेतु शक्षिक भवन निर्माण कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग में एक पृथक इकाई की स्थापना की जानी चाहिए । बाद में शक्षिक भवन सामंजस्य समिति (कनसारटिया) की स्थापना की जा सकती है ताकि औद्योगिक आधार पर बने भवनों का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके ।

(x) शक्षिक भवन विकास मण्डल द्वारा अपनाये गये कम खर्चीले साधनों की जानकारी निजी संस्थाओं को भी दी जानी चाहिए तथा इन संस्थाओं का अधिकतम व्यय सीमा के आधार पर अनुदान स्वीकृत किया जाना चाहिए ।

174 शक्षिक अनुसंधान

शक्षिक अनुसंधान को विकसित करने तथा अनुसंधान कार्य का शक्षिक नीति निर्धारण व शिक्षा के सुधार कार्यों में प्रभावपूर्ण तरीके से सम्बद्ध करने के निमित्त शीघ्र उपाय किये जाने चाहिएँ । इस दृष्टि से निम्नांकित कार्यक्रमों का विकसित किये जाने की आवश्यकता है

(i) राष्ट्रीय शक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के अंतर्गत एक प्रलेख (Documentation) तथा वितरण केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिए ।

(ii) अन्त सम्बन्धित विषयों में शक्षिक अनुसंधान कार्यों का दलों में बाँटकर विकसित किया जाना चाहिए । यह ठीक है कि सभी प्रशिक्षण महाविद्यालय किसी न किसी प्रकार का शोध-कार्य करें किन्तु केवल वे ही शोध-कार्य करें अन्य नहीं, ऐसा करने से अनुसंधान कार्य की प्रगति में बाधा उत्पन्न हुई है । शिक्षापीठों (Schools of Education) का यह विशेष दायित्व है कि वे अन्य विभागों के सहयोग से शक्षिक अनुसंधान कार्य में महती अभिवृद्धि करें ।

(iii) यह वाछनीय है कि शक्षिक विचार एव अनुसधान का विकास करने के लिए राष्ट्रीय विज्ञान सस्थान जसी ही एक राष्ट्रीय शिक्षा महात्मा का स्थापना का जाय जिसके सदस्य प्रमुख शिक्षाशास्त्री हो। यह महात्मा भाव स्वय रूप से गैर सरकारी व्यावसायिक सगठन होना चाहिए, किन्तु इस भारत सरकार से पर्याप्त वित्तीय सहयोग मिलना चाहिए।

(iv) अनुसधान में प्रगति हेतु शिक्षा मत्रालय के अतगत एक शक्षिक अनुसधान परिषद् की स्थापना का जाना चाहिए।

(v) अनुसधान काय प्राप्त सूचनाओ के वर्गीकरण तथा आकडो के विश्लेषण एव उन पर विचार विमश हतु विशिष्ट प्रशिक्षण दिये जाने की तीव्र आवश्यकता है।

(vi) राज्य स्तर पर राज्य शिक्षा सस्थान तथा राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद् का दायित्व होना चाहिए कि व शक्षिक अनुसधान एव विद्यालय म प्रचलित अभ्यासो क मध्य गहरी खाई को समाप्त करें। उच्च शिक्षा के क्षेत्र म विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का भी ऐसे प्रयत्न करने होंगे।

(vii) शक्षिक अनुसधान पर होन वाल कुल व्यय म पर्याप्त बढ़ोत्तरी करनी होगी तदथ यह हो कि राज्य द्वारा शिक्षा पर किये जाने वाले कुल व्यय का 1 प्रतिशत अनुसधान काय पर खच किया जाए।

•

•

शैक्षिक आयोजना, प्रशासन तथा वित्त

175 यदि पूर्वगामी अध्यायों में उल्लिखित शैक्षिक पुनर्गठन के विशाल कार्यक्रम को सफलतापूर्वक एवं प्रभावशाली तरीके से कार्यान्वित किया जाना है तो आवश्यक है कि —

—शैक्षिक आयोजना में सुधार किया जाय

—केन्द्र तथा राज्य दोनों ही स्तर पर सम्पूर्ण प्रशासनिक ढाँचे का पुनर्गठन किया जाय

—शिक्षा के विकास में यथासम्भव अधिक साधनों को उपलब्ध किया जाय और जो भी साधन उपलब्ध हैं उनका मितव्ययता के आधार पर सदुपयोग किया जाय, और

—दृढ़तापूर्वक एक दीर्घकालिक समय तक क्रियान्वित करने के लिए कोई कार्यक्रम अपनाया जाय।

इस अंतिम अध्याय में इन कार्यक्रमों पर कुछ विस्तार से चर्चा की जायेगी।

176 शैक्षिक आयोजना

शैक्षिक आयोजना की सफलता के लिए निम्न बिन्दु अनिवार्य हैं

(i) शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का कोई एक ऐसा विशाल ढाँचा हो जिसके अन्तर्गत स्थानीय भिन्नताओं के आधार पर सामञ्जस्य स्थापित करते हुए राज्य सरकारें तथा स्थानीय अधिकारी अपनी ही कोई योजना बना सकें और उन्हें कार्यान्वित कर सकें।

(ii) 20 वर्षों की अवधि में विभक्त शिक्षा के सम्भावित विकास की सम्पूर्ण दीर्घकालिक योजना बनायी जाय। उक्त सम्भावित योजना को दृष्टि में रखते हुए तथा उपलब्ध साधनों के आधार पर शिक्षा विकास की पंच वर्षीय तथा वार्षिक योजनाएँ बनायी जा सकती हैं। शिक्षा आयोग द्वारा दिये गये सुझावों के आधार पर शिक्षा की राष्ट्रीय नीति की रूपरेखा तथा शिक्षा के सम्भावित विकास की सम्पूर्ण एवं दीर्घकालिक योजना तैयार की जा सकेगी।

177 आजकल राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर अधिकाधिक महत्वपूर्ण अथवा अन्यथा

निर्णय लिए जाने का प्रचलन है। स्थानीय स्तर पर शैक्षिक आयोजना के निमित्त कोई प्रभावशाली व्यवस्था नहीं है। कई बार इसका परिणाम यह होता है कि स्थानीय परिस्थितियों को नजरन्दाज कर दिया जाता है और इस प्रकार राज्य की पहल करने की क्षमता ही समाप्त हो जाती है। अतएव यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय, राज्य तथा स्थानीय अर्थात् तीनों स्तरों पर प्राथमिकता क्रम को अपनाया जाए। प्रत्येक बालक को अच्छी एवं प्रभावशाली प्राथमिक शिक्षा की सुविधा, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण, स्नातकोत्तर शिक्षा एवं अनुसंधान अथवा कृषि एवं उद्योग की शिक्षा जैसे राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यक्रमों को राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिकता इन अर्थों में प्रदान की जाए कि उनके सम्बन्ध में जो भी निर्णय लिए जाएँ वे केन्द्र तथा राज्यों में विचार विमर्श करके ही लिए जाएँ और जब एक बार निर्णय ले लिया जाय तो प्रत्येक राज्य का यह कर्तव्य हो जाना चाहिए कि वह उनको प्रभावपूर्ण तरीके से दृढ़तापूर्वक क्रियान्वित करे। अन्य दूसरे कार्यों में जिनकी संख्या कहीं अधिक होगी, राज्यस्तरीय प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाना चाहिए अर्थात् प्रत्येक राज्य को स्वतन्त्रता हो ताकि स्थानीय परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए वह उनके अनुरूप स्वयं निर्णय ले सके। इनके अन्तर्गत ऐसी समस्याएँ भी सम्मिलित होंगी कि माध्यमिक शिक्षा निःशुल्क की जाए अथवा नहीं। ऐसे मामलों में राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। विद्यालयों में सुविधाएं प्रदान करना तथा अध्यापकों पर न किए जानेवाले व्यय के स्वरूप के सम्बन्ध में निर्णय लेना आदि से सम्बन्धित कुछ अन्य मामलों में स्थानीय प्राथमिकताओं के आधार पर कोई व्यवस्था अपनाई जाय। जिला तथा विद्यालय स्तर पर राज्य सरकारें उचित अधिकारियों को ऐसी शक्तियाँ प्रदान कर सकती हैं कि वे प्रत्यायोजित शक्तियों की सीमाओं के भीतर ऐसे स्वतन्त्र निर्णय ले सकें जो कि स्थानीय परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल हों। इन मामलों में एक जिले से दूसरे जिले अथवा एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में किसी भी प्रकार की समानता बनाए रखने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

178 प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों में तथा राष्ट्रीय स्तर पर किये गए कार्यों के पुनर्विलोकन से स्पष्ट है कि कुछ क्षेत्रों में आयोजना की तकनीक में सुधार किये जाने की आवश्यकता है। इसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(i) नामांकन एवं व्यय पर आवश्यकता से अधिक ध्यान

नामांकन तथा व्यय सम्बन्धी लक्ष्यों को प्राप्त करने पर आवश्यकता से

अधिक बल दिया जाता रहा है । यह सत्य है कि विस्तार की बहुत ही आवश्यकता थी, विस्तार होता भी रहेगा । किन्तु इस पक्ष को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिये जाने का परिणाम यह हुआ है कि गुणात्मकता जैसा महत्त्वपूर्ण पक्ष उपेक्षित ही रहा । इसी तरह, व्यय के लक्ष्यों की पूर्ति पर अधिक ध्यान दिये जाने के परिणामस्वरूप प्राथमिकताओं के क्रम में व्यवधान उत्पन्न हुआ है तथा अपव्यय बढ़ा है । अतः समस्या को उसकी सम्पूर्णता में समझे जाने तथा सामान्य व मुख्यतः गुणात्मक सुधार से सम्बन्धित उद्देश्यों के विशद् स्वरूप को विकसित करने की आवश्यकता है ।

2 सगठित प्रयत्नो की आवश्यकता तथा चयनित पद्धति को अपनाना

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में सामान्य नीति यह रही कि प्रत्येक क्षेत्र में कुछ न कुछ कार्यक्रम अवश्य अपनाया जाये । इसका परिणाम यह हुआ कि जो भी अल्प साधन उपलब्ध थे वे एक विशाल क्षेत्र में बिखर गये । इस नीति में अपव्यय निहित है । अतएव अब यह आवश्यक हो गया है कि कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों पर ध्यान केन्द्रित किया जाए । जैसे अध्यापकों की योग्यता में सुधार, कृषि शिक्षा का विकास, समस्त बालकों के लिए श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था, निरक्षरता का समाप्ति, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण, मुख्य विश्वविद्यालयों की स्थापना, स्नातकोत्तर शिक्षा का विकास एवं उसमें सुधार, छात्रवृत्तियों की संख्या में वृद्धि तथा प्रत्येक स्तर पर लगभग दस प्रतिशत संस्थाओं में गुणात्मक विकास की सर्वोच्च सीमा ।

3 उन कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान जिनमें निपुणता तथा कठिन श्रम की आवश्यकता है

आजकल व्यय सम्बन्धी लक्ष्यों की पूर्ति पर जो बल दिया जाता रहा है, उसका परिणाम यह हुआ है कि वे कार्यक्रम अवश्य कार्यान्वित कर दिये गये हैं जिनमें व्यय करना आसान है, अर्थात् भवन निर्माण अथवा नामांकन में वृद्धि । यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है, क्योंकि ऐसे कई कार्यक्रम भी होते हैं जिनमें अधिक वित्तीय साधनों की अपेक्षा सुविचारित प्रयत्नों, संगठन, निपुणता तथा कठोर श्रम की आवश्यकता होती है । ऐसे कार्यक्रमों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

—विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण का माध्यम बनाये जाने के लिए आधुनिक भारतीय भाषाओं में आवश्यक साहित्य का उत्पादन,
—शैक्षिक अनुसंधान,
—परीक्षा पद्धति में सुधार,

—विद्यालय पाठ्यपुस्तकों तथा शिक्षण एवं अध्ययन उपकरणों का निर्माण,

—शिक्षक एवं शिक्षा विभागों के अधिकारियों का सेवारत प्रशिक्षण,

—परिवीक्षण की तकनीक में सुधार

—स्थानीय समाज एवं अभिभावकों के सम्बन्धों में सुधार,

—प्रतिभासम्पन्न छात्रों के निमित्त निर्देशन तथा सम्पन्नता प्रदायी कार्यक्रमों की व्यवस्था तथा पिछड़े हुए एवं मन्द विकसित छात्रों को विशेष सहायता।

इस प्रकार के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। ध्यान देने की बात तो यह है कि वर्तमान परिस्थितियों में जबकि वित्तीय साधन सीमित हैं अधिक पूँजी की लागत वाले कार्यक्रमों की अपेक्षा इस प्रकार के कम खर्चीले कार्यक्रम कार्यान्वित किये जाने पर कहीं अधिक विशेष बल दिया जाना चाहिए।

179 नियन्त्रण अभिकरण

शैक्षिक प्रशासन की मुख्य समस्या यह है कि केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय स्वायत्त सरकारों के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को किस प्रकार निर्धारित किया जाय। शिक्षा का दायित्व राज्य सरकारों का है अतएव स्वाभाविक रूप से उनका स्थान मुख्य है। किन्तु इसमें दो प्रकार के परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है। एक तरफ तो राज्य सरकारों को विद्यालय शिक्षा सम्बन्धी दायित्व को स्थानीय अधिकारियों के साथ मिलकर वहन करना होगा क्योंकि विद्यालयों के दैनिक प्रशासन का स्थानीय प्राधिकरणों से यथासम्भव निकट का सम्पर्क होना चाहिए। अतः जिला स्तर पर उस विधिवत निर्मित स्थानीय प्राधिकरण को और दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें विश्वविद्यालयों, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा भारत सरकार से मिलकर दायित्व वहन करना होगा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि

—विद्यालय शिक्षा मुख्य रूप से राज्य एवं स्थानीय साझे पर और

—उच्च शिक्षा केन्द्र एवं राज्य के साझे पर निर्भर करता है।

यह एक आधारभूत सिद्धान्त है जिससे शैक्षिक आयोजना एवं प्रशासन के दोनों आवश्यक केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण के बीच उचित अनुपात के विकास का निश्चित आधार रहना चाहिए।

180 केन्द्रीय सरकार के कार्य

संविधान में जो स्थान शिक्षा को प्राप्त है वह भारत जैसे विशाल देश के लिए सर्वोत्तम है। आवश्यक है कि शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र प्रेरणादायक तथा उत्साहित नेतृत्व प्रदान करे। वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत जिनकी उन्नति

सम्भव है उन प्रयोगों में स्वतन्त्रता तथा लचीलापन बनाये रखना आज की सर्वाधिक आवश्यकता है। अतएव शिक्षा के विकास तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण की दिशा में संविधान के वर्तमान प्रावधानों का खुल कर उपयोग किया जाना चाहिए।

181 केन्द्रीय सरकार के लिए यह भी आवश्यक है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में संस्थाएँ स्थापित करने के अतिरिक्त वह सामाजिक विज्ञानों में विशेषज्ञता प्रदान करने वाली संस्थाओं की स्थापना करे। सामाजिक विज्ञानों में मानव विषय तथा शिक्षण विज्ञान भी सम्मिलित है। ये संस्थाएं विश्वविद्यालयों के घनिष्ठ सम्पर्क में स्थापित की जानी चाहिए तथा ये विश्वविद्यालयी व्यवस्था के अभिन्न अंग-स्वरूप होनी चाहिए।

182 केन्द्र शासित क्षेत्रों में भी केन्द्र शिक्षा का विकास कर सकता है, मुख्यत दिल्ली में जहाँ कि दूसरे क्षेत्रों के लिए आदर्श स्वरूप संस्थाओं की स्थापना की जा सकती है।

183 निपुणता प्राप्त व्यक्तियों को केन्द्र द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में भेजा जाना चाहिए तथा सभी मामलों में सम्मति एवं सहयोग देने के उद्देश्य से देश में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों की सेवाएँ राज्य सरकारों को उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

181 केन्द्रीय एवं केन्द्र सचालित क्षेत्रों में शिक्षा प्रसार के माध्यम से केन्द्र को शिक्षा के निमित्त वित्तीय दायित्व वहन करना चाहिए। इसी व्यवस्था तन्त्र के सहारे केन्द्र राष्ट्रीय हित के उद्देश्य से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में शिक्षा के विकास को प्रोत्साहित तथा निर्देशित कर सकता है।

केन्द्रीय क्षेत्र में चलाये जाने वाले कार्यक्रमों में से कुछ इस प्रकार हैं

(i) राष्ट्रीय छात्रवृत्ति कार्यक्रम में विस्तार,

(ii) पिछड़ी जातियों के निमित्त छात्रवृत्ति कार्यक्रम में विस्तार,

(iii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए आवंटन,

(iv) कृषि इंजीनियरिंग तथा चिकित्सा शिक्षा का विकास, और

(v) अधिक अनुसंधान में उन्नति।

केन्द्र सचालित क्षेत्र के लिए जिन कार्यक्रमों की सिफारिश की जाती है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं

(i) शिक्षक प्रशिक्षण,

(ii) माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का आरम्भ,

(iii) राज्य शिक्षा संस्थानों का विकास,

परिशिष्ट –5

शैक्षिक व्यय

सारिणी संख्या–1

भारत में कुल शैक्षिक व्यय 1950-51 से 1965-66 तक

	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66 अनुमानित
1 सभी स्रोतों से कुल शैक्षिक व्यय (दस लाख रुपयों में)	1 444	1,897	3 114	6,000
2 वृद्धि का सूचकांक	100	166	301	524
3 प्रति व्यक्ति शैक्षिक व्यय (रु.)	3 2	4 8	7 8	12 1
4 वृद्धि का सूचकांक	100	150	244	372
5 कुल राष्ट्रीय आय (प्रचलित मूल्यों के आधार पर) (दस लाख रुपयों में)	95 300	99,800	141,100	210,000
6 वृद्धि का सूचकांक	100	105	145	220
7 प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (प्रचलित मूल्यों के आधार पर)	266 5	255 0	325 6	424 4
8 वृद्धि का सूचकांक	100	96	122	159
9 राष्ट्रीय आय के प्रतिशत स्वरूप कुल शैक्षिक व्यय	1 2	1 9	2 4	2 9
10 वृद्धि का सूचकांक	100	158	200	242
	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	समस्त तीनों योजनाएँ
11 कुल शैक्षिक व्यय की औसत वार्षिक वृद्धि	10 0%	12 7%	11 5%	11 7%

स्रोत—शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन पृ. 465

सारिणी संख्या –2

भारत में (विभिन्न) स्रोतों द्वारा शिक्षा पर व्यय

(1950 51 से 1965 66 तक)

	1950 51	1955 56	1960 61	1965 66 अनुमानित
1 राजकीय				
(i) कुल व्यय (000 रुपया म)	652,678	1 172 049	2,340,914	4,271,856
(ii) वृद्धि का सूचकांक	100	179	359	655
(iii) शिक्षा पर कुल व्यय का प्रतिशत	57 1	61 8	68 0	71 2
2 स्थानीय प्राधिकरण कोष				
(i) कुल व्यय (000 रुपया म)	124 987	163 548	224,914	378 031
(ii) वृद्धि का सूचकांक	100	131	180	302
(iii) शिक्षा पर कुल व्यय का प्रतिशत	10 9	8 6	6.5	6 3
3 शुल्क				
(i) कुल व्यय (000 रुपयों म)	233,272	379 033	590,258	918 077
(ii) वृद्धि का सूचकांक	100	162	253	394
(iii) शिक्षा पर कुल व्यय का प्रतिशत	20 4	20 0	17 1	15 3
4 अन्य स्रोत				
(i) कुल व्यय (000 रुपयों में)	132 885	181,980	287,715,	432,036
(ii) वृद्धि का सूचकांक	100	137	217	325
(iii) शिक्षा पर कुल व्यय का प्रतिशत	11 6	9 6	8 4	7 2

5 वृद्धि की औसत वार्षिक दर	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	समस्त तीनों योजनाएँ
(i) राजकीय कोष	12 4	14 8	12 8	13 3
(ii) स्थानीय प्राधिकरण कोष	5 5	6 6	10 9	7 3
(iii) शुल्क	10 3	9 2	9.2	9 6
(iv) अन्य स्रोत	6 5	9 6	8.5	8 1

स्रोत शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन पृ 471

सारिणी संख्या –3

भारत में लक्ष्यों पर आधारित शिक्षा पर व्यय

(1950 51 से 1965 66 तक)

लक्ष्य	कुल व्यय (000 रु में)		कुल व्यय का प्रतिशत		वृद्धि की वार्षिक औसत दर
	1950-51	1965-66	1950 51	1965-66	
अ प्रत्यक्ष व्यय					
1 पूर्व प्राथमिक विद्यालय	1 198	11,000	0 1	0 2	15 0
2 निम्न प्राथमिक विद्यालय	364 813	1,220,500	31 9	20 3	8 4
3 उच्च प्राथमिक विद्यालय	76 990	717,500	6 7	12 0	16 0
योग (प्रथम स्तर)	443 031	1 949 000	38 7	32 5	10 4
4 माध्यमिक विद्यालय	230 450	1,181,000	20 1	19 7	11 5
5 व्यावसायिक विद्यालय	36 944	250 000	3 2	4 2	13 6
6 विशेष विद्यालय	23,335	39 920	2 0	0 7	3 6
7 माध्यमिक/इंटरमिडियट शिक्षा बोर्ड	5,338	15 000	0 5	0 8	15 3
योग (द्वितीय स्तर)	296 067	1 515 920	25 9	25 3	11 5
8 विश्वविद्यालय	49,052	270 000	4 3	4 5	12 0
9 शोध विश्वविद्यालय	6 256	65,000	0 5	1 1	16 0
10 विज्ञान एवं कला महाविद्यालय	71 711	327,500	6 3	5 5	10 7
11 व्यावसायिक शिक्षा के महाविद्यालय	42 194	350 000	3 7	5 8	15 1
12 विशिष्ट शिक्षा के महाविद्यालय	2 221	17 500	0 2	0.3	11 7
योग (तृतीय स्तर)	171 440	1 030 000	15 0	17 2	12 7
13 (योग प्रत्यक्ष)	910 539	4 494 920	79 6	71 9	11 2
ब अप्रत्यक्ष व्यय					
14 निर्देशन एवं निरीक्षण	27,364	114 009	2 4	1 9	10 0
15 भवन	99 270	666 055	8 7	11 1	13.5
16 छात्रवृत्तियाँ स्टाइपेंड आदि	34 456	420 035	3 0	7 0	19 1
17 छात्रावास	18 261	95 463	1 6	1 6	11 7
18 विविध	53 928	209 518	4 7	3 5	9 5
19 योग अप्रत्यक्ष	233 282	1 505 080	20 4	28 1	13 2
20 सर्व योग	1 143 822	6 000 000	100 0	100 0	11 7

स्रोत शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन पृ 467

सारिणी संख्या-4

कुल शैक्षिक व्यय

(1965 85)

	1965-66	1970-71	1975-76	1980-81	1985-86
1 1965 66 के मूल्यों पर आधारित राष्ट्रीय आय-वृद्धि में प्रतिवर्ष 6% बढ़ोतरी का अनुमान (रुपये दस लाख में)	210 000	231,000	376 000	503 000	673 000
2 वृद्धि का सूचकांक	100	134	179	240	3[illegible]0
3 अनुमानित जन संख्या (दस लाख की संख्या में) (Projection) मध्यम स्तर का बहिर्वेशन	495	560	630	695	748
4 वृद्धि का सूचकांक	100	113	127	140	151
5 जनसंख्या के प्रति व्यक्ति पर राष्ट्रीय आय (रुपयों में)	424	[illegible]02	597	724	[illegible]00
6 वृद्धि का सूचकांक	100	118	141	171	212
7 कुल शैक्षिक व्यय (लाख रुपयों में) वृद्धि में प्रतिवर्ष 10% बढ़ोतरी का अनुमान)	6 000	9 [illegible]63	1[illegible],562	25 0[illegible]3	40 364
8 वृद्धि का सूचकांक	100	161	259	418	673
9 राष्ट्रीय आय की तुलना में कुल शैक्षिक व्यय का प्रतिशत	2.9	3 4	4 1	5 0	6 0
10 वृद्धि का सूचकांक	100	117	141	172	2[illegible]7
11 प्रति व्यक्ति शैक्षिक व्यय (रुपयों में)	12.1	17.3	24 7	36.1	4 0
12 वृद्धि का सूचकांक	100	143	204	293	446

स्रोत—शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन, पृ 473

सारिणी संख्या-5

भारत में लक्ष्यों पर आधारित शैक्षिक व्यय

(1975-76 और 1985-86)

लक्ष्य	कुल व्यय (000 रु में)		कुल व्यय का प्रतिशत	
	1975-76	1985-86	1975-76	1985-86
आवर्तक				
पूर्व प्राथमिक	236 956	488 531	1 5	1 2
निम्न प्राथमिक	3 719,220	6 129 616	24 1	15 2
उच्च प्राथमिक	2 451 567	5 110 287	15 8	12 7
निम्न माध्यमिक	2 432 310	7,072 638	15 6	17 5
उच्च माध्यमिक	1 312,336	3,613 519	8 4	9 0
निर्देशन एवं निरीक्षण	389 050	1 614 560	2 5	4 0
छात्रवृत्तियाँ	301 680	1 190 210	1 9	3 7
योग (विद्यालय)	10 873 119	25 579 421	69 9	63 4
पूर्व स्नातक	1 892,766	4 238 963	12 2	10 [illegible]
स्नातकोत्तर	1,124 200	4 013 400	7 2	10 0
छात्रवृत्तियाँ	628 200	2 416 200	4 0	6 0
योग उच्च शिक्षा	3 615 166	10,698 563	23 4	26 5
प्रौढ़ शिक्षा	77 810	403 640	0 5	1 0
योग (आवर्तक)	14 596 095	36 681 624	93 8	90 9
पूँजी				
विद्यालयी शिक्षा	389 050	1 008 890	2 5	2 5
उच्च शिक्षा	576 855	2 673 486	3 7	6 6

सारिणी संख्या-6

प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत

(1950-51 से 1985-86 तक)

वर्ष	प्रति अध्यापक औसत वार्षिक वेतन	प्रति अध्यापक छात्र संख्या	गैर अध्यापकीय लागत का अध्यापकीय लागत से अनुपात	औसत वार्षिक लागत: अध्यापकीय लागत के कारण	औसत वार्षिक लागत: गैर अध्यापकीय लागत के कारण	औसत वार्षिक लागत: योग
	रु			रु	रु	रु
			पूर्व प्राथमिक शिक्षा			
1950-51	914	25	51.3	37	19	55
1965-66	1,000	31	56.3	35	20	55
1975-76	1,800	40	50.0	50	25	74
1985-86	2,500	40	50.0	69	34	103
			निम्न प्राथमिक शिक्षा			
1950-51	545	34	24.6	16	4	20
1965-66	1,046	38	11.1	27	3	30
1975-76	1,800	50	20.2	43	9	52
1985-86	2,500	45	19.6	67	13	80
			उच्च प्राथमिक शिक्षा			
1950-51	682	24	32.0	28	9	37
1965-66	1,087	31	12.4	40	5	45
1975-76	2,100	35	20.0	73	14	87
1985-86	2,875	35	20.0	99	20	119
			निम्न माध्यमिक शिक्षा (सामान्य)			
1950-51	1,258	25	44.8	50	23	73
1965-66	1,959	25	37.0	78	29	107
1975-76	3,150	25	33.3	152	51	203
1985-86	4,150	25	33.3	201	67	268
			निम्न-माध्यमिक शिक्षा (व्यावसायिक)			
1950-51	1,705	16	86.8	106	92	197
1965-66	2,887	15	100.0	208	208	417
1975-76	—	—	—	—	—	500
1985-86	—	—	—	—	—	600
			उच्च माध्यमिक शिक्षा (सामान्य)			
1975-76	1,500	20	33.3	272	91	363
1985-86	5,500	20	33.3	333	111	444
			उच्च माध्यमिक शिक्षा (व्यावसायिक)			
1975-76	—	—	—	—	—	700
1985-86	—	—	—	—	—	800

स्रोत—शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन, पृ. 480

सारिणी संख्या-7

उच्च शिक्षा में प्रति छात्र औसत वार्षिक लागत

(1950-51 से 1985 86 तक)

स्था का प्रकार	प्रति अध्यापक औसत वार्षिक वेतन	प्रति अध्यापक छात्र संख्या	गैर अध्यापकीय लागत का अध्यापकीय लागत से अनुपात	औसत वार्षिक लागत		
				अध्यापकीय लागत के कारण	गैर अध्यापकीय लागत के कारण	योग
	रु			रु	रु	रु
अवर-स्नातक						
(अ) कला एवं वाणिज्य						
1950 51	2,696	20	73 7	133	98	231
1965 66	4 000	20	63 8	200	128	328
1975 76	6 000	15	66 7	440	293	733
1985 86	7,500	15	66 7	550	367	917
(ब) विज्ञान एवं व्यावसायिक						
1950 51	3 948	11	118 1	357	422	779
1965 66	6 410	11	100 0	581	583	1 167
1975-76	—	—	—	—	—	1 500
1985-86	—	—	—	—	—	2,000
स्नातकोत्तर						
(अ) कला एवं वाणिज्य						
1975 76	10 000	8	118	1 375	1,625	3 000
1985-86	12 000	8	118	1 650	1,950	3 600
(ब) विज्ञान एवं व्यावसायिक						
1975-76	—	—	—	—	—	5,000
1985-86	—	—	—	—	—	6 000

स्रोत—शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन पृ 483